☞ इस पुस्तकका मूल्य प्रथम १ रुपया रक्खा गया था मगर साधु-साध्वी, [illegible] का विशेष तया वांचकर लाभ उठावें इसलिये इसका मूल्य रु. ०-१२-० बारह आने रक्खा जाता है ।

[illegible] श्री आत्मा[illegible]

[illegible] के [illegible] मुनि महाराज श्री

[illegible]

मुनि श्री[illegible]जी.

॥ ॐ ॥

॥ नमः श्री वीतरागाय ॥

परिशिष्ट पर्व

= अर्थात =

ऐतिहासिक पुस्तक.

भाग १ ला.

हिन्दी अनुवाद लेखक,

स्वर्गीय जैनाचार्य श्रीमद्विजयानन्दसूरि (श्री आत्मारामजी) के प्रशिष्य मुनि महाराज श्री लब्धिविजयजीके शिष्य

मुनि श्रीतिलकविजयजी.

प्रकाशक.

श्री आत्मतिलक ग्रंथ सोसायटी-जामनगर.

श्री वीर सं. २४४३ श्री आत्म सं. २२

विक्रम सं. १९७३ ईस्वीसन १९१७

प्रथमावृत्ति प्रति १०००

मूल्य-रु. १-०-०

विद्या सागर प्रेसमें छपा, जामनगर



सत्य धर्मोपदेशक
मुनि महाराज श्रीललितविजयजी.

Vidya-Sagar Press, Jamnagar.

॥ समर्पण ॥

परमपूज्य विद्वद् शिरोमणि,

[illegible],

श्रीमान् जयविजयजी महाराज साहब

आपके करकमलोंमें यह **परिशिष्ट पर्व**

सादर समर्पित है।

आशा है कि आप साहेब इस लघु ग्रन्थको

प्रेमपूर्वक स्वीकार कर मुझे

अनुग्रहित करेंगे।

भवदीय कृपाकांक्षी,

मुनि तिलकविजय.



मुनि महाराज श्रीतिलकविजयजी.

विद्यासागर प्रेस, जामनगर.

भूमिका.

कलिकाल सर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य महाराजकी शुभ्र कीर्तिको सदाके लिए कायम रखनेवाला और सभ्य संसारके हृदयमें आश्चर्य प्राप्त करानेवाला उनका ज्ञान गुण आज भी उनका परिचय दे रहा है । उनके समान सर्व शास्त्र पारगामी उस समय आर्यक्षेत्रमें अन्य कोई न था, बल्कि यों कहना चाहिये कि उनके बाद वैसा प्रतिभाशाली तथा चमत्कारी पुरुष आजतक नहीं हुआ, इसीसे तत्कालीन सर्व धर्मके नेताओं तथा विद्वान् पुरुषोंने मिलकर उन्हें कलिकाल सर्वज्ञकी पदवीसे विभूषित किया था, उन महात्माओंकी रत्नप्रभ लेखनीसे लिखे हुवे ग्रंथरत्नोंसे विदित होता है कि सचमुचही वे इस पदवीके योग्य थे । उन आदर्शजीवी महात्माने अपनी हयातिमें धर्मोपदेशादि अन्य सत्कार्य करते हुवे भी साढ़ेतीन क्रोड़ श्लोक प्रमाण ग्रंथोंकी रचना की हैं मगर आज हमारे दुर्भाग्यवश बहुतसा समय परिवर्तन होनेसे बहुतसे उनके रचे हुवे ग्रंथ गायब होगये हैं तथापि उनकी चमत्कारिणी रचना वर्तमान समयमें भी हमारे लिए कुछ कम नहीं है । प्राय उन्होंने कोई विषय ऐसा नहीं छोड़ा कि जिसपर अपनी ओजस्विनी लेखनी न चलाई हो; व्याकरण, काव्य, कोष, न्याय, अलंकार, छन्द,

नीति, स्तुति, तीर्थंकरों आदि उत्तम पुरुषोंके पवित्र जीवनचरित्रादि विषयोंके ग्रंथ बड़ीही प्रशस्त शैलीसे लिखे हैं । यह "परिशिष्ट पर्व" ग्रंथ भी उन्हीं महात्माओंकी रचना है, ऐसे ग्रंथोंके पढ़नेसे पाठकोंको बहुत कुछ लाभ होसकता है ।

यदि संसारमें मनुष्य अपने जीवनको पवित्र बना सकता है तो आदर्शजीवी सत्पुरुषोंके पवित्र जीवनचरित्रोंका अनुकरण करके ही बना सकता है, इस लिए पवित्र मनुष्यजीवन बनानेमें आदर्शजीवी पुरुषोंके सच्चरित्र बाँचनेकी अत्यावश्यक्ता है दूसरे यह भी बात है कि जिस जाति या धर्मका इतिहास प्रकाशमें आया है उस जाति, धर्मने संसारमें शीघ्रही तरक्की पाई है, अत एक आधुनिक जमानेमें इतिहास पूर्ण आदर्शजीवी पुरुषोंकी जीवनचरिया समस्त भाषाओंमें लिखनेकी परमावश्यक्ता है । जिस मज़हबका प्राचीन इतिहास संसारकी समस्त भाषाओंमें होता है वह मज़हब अवश्यमेव शीघ्रही समुन्नतिके शिखरोंपर चढ़ जाता है । हमारे पवित्र जैनधर्मका प्राचीन इतिहास संस्कृत, प्राकृत या कुछ गुर्जर भाषाके सिवाय अन्य भाषाओंमें न होनेसे ही मारवाड़, मेवाड़ मालवा, मध्यप्रान्त, पंजाब आदि देशनिवासी हमारे जैनबंन्धु भी अपने इतिहाससे वंचित हैं तो फिर जैनेतर लोगोंमें जैन इतिहासकी प्रसिद्धिकी तो बातही क्या ? । हिन्दी भाषा भाषी हमारे जैनबंधु जैन हिन्दी साहित्यके लिए ऐसे तरस रहे हैं कि जैसे चातक पक्षी मेघके लिए, मगर आश्चर्यकी बात है कि इस बातको जानकर भी हमारे जैन हिन्दी विद्वान अपनी ओजस्विनी लेखनीको चिरकालसे विरामही दे रहे हैं । हमारी राय है कि जो व्यक्ति इस सुअवसरमें अपने इतिहास या साहित्यको प्रकाशित करेगा अवश्यमेव वह अपनी तरक्की पायगा ।

इस ग्रन्थमें भगवान् श्रीमहावीरस्वामीके बाद उनके पट्टपर जो जो आदर्शजीवी पुरुष होगये हैं उन महात्माओंका इतिहास है अर्थात् श्रीमहावीर भगवानके बाद उनके अन्तिम गणधर श्री सुधर्मस्वामी, उनके शिष्य अन्तिमकेवली श्रीजंबूस्वामी, उनके शिष्य प्रथम श्रुतकेवली श्रीप्रभवस्वामी, उनके शिष्य श्रीमान् शय्यंभवसूरि, उनके शिष्य श्रीयशोभद्रसूरि, उनके शिष्य श्रीभद्रबाहुसूरि तथा श्रीसंभूतिविजय, उनके पट्टधारी अन्तिम श्रुतकेवली, श्रीस्थूलभद्रसूरि, आदि सत्पुरुषोंकी जीवनचरिया है, जिसमें अन्तिमकेवली श्रीजंबूस्वामीका पवित्र चरित्र १८ कथाओं सहित विस्तारपूर्वक लिखा गया है। मगधाधिपति श्रीश्रेणिक भूपालसे कोणिक, उदायी, नवनन्द, चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार, अशोक, कुणाल तथा संप्रति आदि राजाओंकी राज्यप्रणाली, इत्यादि विषयोंका सरल हिन्दी भाषामें परिचय दिया गया है। हमें आशा है कि इस ग्रंथको पढ़कर हिन्दी भाषा भाषी हमारे जैनबन्धु अपने प्राचीन इतिहाससे परिचित होंगे।

पुस्तक बड़ा होनेके भयसे इसके "दो भाग" किये गये हैं, अत एव पाठकोंसे निवेदन है कि इस ग्रंथका "दूसरा भाग" भी अवश्य पढ़ें।

श्री वी. सं. २४४३,
श्री आत्म सं. २२
विक्रम सं. १९७३
वैशाख शुक्ल चतुर्दशी.
जामनगर,
हरजी जैनशाला.

मुनि तिलकविजयजी पंजाबी.

परिशिष्ट पर्व

अर्थात्

ऐतिहासिक पुस्तक.

॥ पहला परिच्छेद ॥

प्रसन्नचंद्र राजर्षि और वल्कलचीरी.

॥ वन्दे वीरम् ॥

कल्याणपादपारामं श्रुतगङ्गाहिमाचलम् ।
विश्वाम्भोजरविं देवं वन्दे श्रीज्ञातनन्दनम् ॥ १ ॥
पान्तु वः श्रीमहावीर-स्वामिनो देशनागिरः ।
भव्यानामान्तरमल-प्रक्षालनजलोपमाः ॥ २ ॥

इसी जंबुद्वीपके अर्ध दक्षिण भरतक्षेत्रमें “मगध” नामका एक बडा भारी देश है। उस देशमें गाम तो नगरोंके समान हैं,

और नगर विद्याधरोंके नगरोंके समान हैं । उस देशकी भूमि तो ऐसी रसाल है कि, सर्व प्रकारके पाक वहांपर होते हैं । दुर्भिक्षका तो वहां कोई नामतकभी नहीं जानता वह देश धनधान्यादिसे परिपूर्ण है । वहां वर्षाभी समयपरही होती है । परन्तु असमय नहीं, वहांकी गौएं तो मानो कामधेनुकेही समान हैं । अर्थात् वह देश सर्व सौख्य संपन्न है । उस देशकी प्रजा रोगरहित, परमायुपवाली, धर्ममें रक्त होकर तीनोंही वर्गको साधती है । उस देशमें अमरावतीके समान "राजगृह" नामका एक नगर है, उस नगरमें बडेही मनोहरप्रासाद हैं और वर्षाकालमें जिनेश्वर देवके मंदिरोंपर सुवर्णके दंडवाली ध्वजायें पवनसे उडती हुई मानो विजलीका हास्यपूर्वक तिरस्कार करती हैं । वहांपर जिनधर्मका ऐसा तो साम्राज्य है, कि—वहांकी स्त्रियां अपनी क्रीडाके लिये जो पाले हुये तोते हैं, उनकोभी अपने २ घरोंमें श्रीजिनेश्वर देवकी स्तुति पढाती हैं । उस नगरमें अपनी भुजाबलसे शत्रुओंको परास्त करनेवाला और न्यायको पालन करनेवाला "श्रेणिक" नामका राजा राज्य करताथा । उसके हृदयरूप मंदिरमें सम्यक्त्वरूप रत्नके प्रकाशसे मिथ्यात्वरूपान्धकारको ठहरनेकेलिये लेशमात्रभी अवकाश न था, और उसके औदार्य, धैर्य, गांभीर्य, और शौर्यादि गुणोंका कीर्तन देवलोकमेंभी देवाङ्गनायें किया करतीथीं. और वह अपनी प्रजाको संतानके समान पालन करताथा परंतु शत्रु तथा कुकर्मियोंके लिए तो यमराजके तुल्यही था अर्थात् शत्रु राजा उसकी आज्ञाको ऐसी पालन करतेथे कि जैसे इंद्रकी आज्ञा देवता पालते हैं. इसतरह उसकी अखंडाज्ञा प्रवर्तते हुए कुछ समय बीत गया. एक दिन बहुतसे सुरासुरोंके सहित साधुसमुदायके साथ तीन लोकके जीवोंको अभयदान

देनेवाले और सर्व सुखोंकी खान कल्याणके निदान भगवानश्री महावीर स्वामी आ पधारे, और उस नगरके बाह्योद्यानमें देवताओंने चाँदी, सुवर्ण और रत्नमय इन तीन प्रकारके प्राकारोंसे विभूषित समवसरणकी रचना की, भगवान श्रीमहावीरनेभी पूर्वके दरवाजेसे प्रवेश करके समवसरणके बीचमें जो "देवछंद" में सिंहासन था उसको अपने चरणकमलोंसे ऐसा विभूषित किया जैसे कि, राजहंस कमलको करता है और श्री चतुर्विध संघभी यथा योग्य स्थानपर बैठ गया.

भगवान श्री महावीर स्वामीने कर्मरूप तापसे तपे हुए संसारवासि जीवोंके लिए वर्षाकालके मेघके समान वाणीसे धर्म देशना प्रारम्भ की इधर राजगृह नगरके रहनेवाले वनपालने श्री महावीर स्वामीका समवसरण देखकर राजगृह नगरमें जाकर श्रेणीक राजाके दरबारमें त्रैलोक्यनाथ भगवान श्री महावीर स्वामीके आनेकी वधाई दी. श्रेणिक राजानेभी परमोपकारी भगवान श्री महावीर स्वामीका आगमन सुनकर फनसके फलके समान रोमांचित होकर और अपने सिंहासनसे नीचे उतरके भगवानका मनमें ध्यान कर भूमिपर मस्तक लगाकर भक्तिपूर्वक श्री महावीर स्वामीको नमस्कार किया और उस आदमीको बहुतसा दान दिया. अब धर्मात्मा श्रेणिक राजा बड़े उत्साहसे भगवान श्री महावीर स्वामीको वन्दन करने जानेकी तैयारी करने लगा और नौकरोंको हुक्म कर दिया कि हमारी सवारी तैयार करो. आप वन्दन यात्राके योग्य वस्त्र तथा आभरण धारण करने लगा. इतनेमें हाथी, घोड़े, रथादि तैयार करके नौकरोंने दरबारमें खबर दी कि आपकी सवारी तैयार है. राजा उसी वक्त भद्रकुंजर नामके हाथीपर चढ़ गया और उस हाथीपर चढ़ा हुआ

राजा ऐसा शोभने लगा जैसा कि प्रातःकालमें उदयाचलपर सूर्य शोभता है. हाथियोंके घंटोंके तथा घोड़ोंके हींसनेकी आवाजसे मानो शब्दाद्वैत होरहाथा. इसतरह अनेक प्रकारकी ऋद्धिके साथ त्रैलोक्यनाथको वन्दन करनेकेलिए मगधाधिपति "श्रेणिक" चल पड़ा. रास्तेमें अनेक प्रकारके बाजे बजते हुए जारहे हैं. कितनेक सैनिक आगे तथा कितनेक पीछे बीचमें इंद्रके समान राजा है और दो अग्रेसरी सेनापति सबसे आगे जारहेथे उन्होंने आगे जाते हुए रस्तेमें एक पाँवसे खड़े हुए दोनो भुजा ऊपरको उठाये और सूर्यके सामने दृष्टि लगाये हुए एक शांत मूर्ति मुनिको देखा और देखकर उनमेंसे एक जना बोला कि अहो धन्य है इस महात्माको!! देखो कैसी कड़ी तपस्या कर रहा है. पहले तो एक पाँवके आधारसे खड़ा होनाही दुष्कर है फिर सूर्यके सामने निश्चल दृष्टि लगाकर कौन खड़ा होसकता है? बस इस महा धैर्यवान महात्माको स्वर्ग तथा अपवर्गके सुख कुछभी दूर नहीं क्योंकि कहाभी है कि--भूयसा तपसा किं किं नासाध्यमपि साध्यते--यह बात सुनके दूसरा बोला. अरे भाई क्या तुम इसको नहीं जानते? यह तो राजा प्रसन्नचंद्र है और इसकी सबही तपश्चर्या व्यर्थ है क्योंकि इसने अपनी राजगद्दीपर अपने एक छोटेसे लड़केको बैठाकर मंत्रियोंको सारसंभाल करनेकी आज्ञा देकर दीक्षा ग्रहण करली मगर अब वेही मंत्रिलोग उस लड़केको मारके राज्य लेनेकी तैयारी कर रहे हैं और उस लड़केके मारे जानेपर इसके पूर्वजोंका वंश सर्वथा निर्मूल होजायगा और इसकी जो स्त्रियां हैं उन बिचारी अबलाओंकी न जाने क्या गति होगी? अतएव हे भाई यह विना बिचारे कार्य करनेसे धर्मी नहीं किंतु उलटा पापका भागी है. उन दोनोंही सैनिकोंके मुखसे यह कथन

सुनकर प्रसन्नचंद्र राजर्षि अपने मनमें विचार करने लगा कि अहो उन दुरात्मा मंत्रियोंका सत्कार किया हुआ सर्पको दूध पिलानेके समानही हुआ जो कि वे विश्वासघातक पापात्मा मेरे लड़केको मारके राज्य लेनेकी तैयारी करते हैं, यदि मैं इस वक्त वहां होता तो उन पापियोंको ऐसी शिक्षा देता कि जिसे सारी जिंदगी याद रखते, अब मेरे जीनेसेभी क्या और इस दुष्कर तपसेभी क्या जो मैं अपने लड़केका पराभव जीते हुए देख रहा हूँ, इसतरह प्रसन्नचंद्र राजर्षि समाधिसे च्युत होकर अपने साधुपनेको भूल गया और क्रोधके वश होकर अधिकाधिक दुर्ध्यानमें प्रवृत्त होगया, सिंहावलोकन न्यायसे उन अपने पुत्रके शत्रुमंत्रियोंको साक्षात देखकर उनके साथ मनही मनमें युद्ध करता हुआ अनेक प्रकारके रणसंबंधि छेदनभेदन करने लगा, इतनेमेंही अपनी सेनासाथ मगधाधिपति "श्रेणिक" राजा वहांपर आ पहुँचा और उस मुनिको एक पाँवसे खड़े देख तथा दोनों भुजा-ऊपरको उठाये हुए और सूर्यके सामने निष्कंप दृष्टि लगाये देखकर अपने हाथीसे नीचे उतरके बड़ी भक्तिपूर्वक पंचांग नमस्कार किया, और उस मुनिको वैसी अवस्थामें स्थिर देखकर सहर्ष उसके तपकी प्रशंसा करता हुआ वहांसे आगे बढ़ा और थोड़ीही देरमें जो भगवान महावीरस्वामीके चरणारविंदोंसे पवित्र उद्यान था, वहां जा पहुँचा और जगत्प्रभुको (पंचाभिगम) पूर्वक भक्तिसे वन्दन करके यथायोग्य स्थानपर बैठ गया, अवसर पाकर "श्रेणिक राजाने" भगवान श्रीमहावीरस्वामीसे विनयपूर्वक हाथ जोड़कर पूछा कि हे भगवन्! रस्तेमें ध्यानारूढ श्री प्रसन्नचंद्र राजर्षिको जिस वक्त मैंने वन्दन किया यदि उस वक्त उनकी मृत्यु होती तो वे किसगतिको प्राप्त होते? उस वक्त करुणाके स-

मुद्र भगवान श्रीमहावीरस्वामी बोले हे राजन्! यदि प्रसन्नचंद्र राजर्षि उस वक्त काल करता तो सातवीं नरकमें जाता, यह सुनकर श्रमणोपासक राजा सरल बुद्धिवाला मनमें विचार करने लगा कि अहो ऐसा उग्र तप करनेवाले महामुनिकी यह क्या गति? यह विचार करके फिरसे हाथ जोड़कर राजा पूछने लगा कि हे भगवन्! यदि इस वक्त काल धर्मको प्राप्त हो तो कौनसी गतिमें जावे? भगवान बोले हे राजन्! यदि इस समय काल करे तो सर्वार्थ सिद्धिके योग्य है याने २६ वें देवलोकमें जावे। साश्चर्य राजा कहने लगा कि हे प्रभो! सर्वज्ञकी वाणी दो प्रकारकी क्यों? आप कृपा कर मुझ अनभिज्ञको इस बातको समझाइये।

भगवान श्रीमहावीरस्वामी बोले कि राजन्! जिस वक्त तुमने उस मुनिको वन्दन किया था उस वक्त वह रौद्र ध्यान-परायण था अत एव यदि उस वक्त काल करता तो सातवीं नरकमें जाता, मगर अब शुक्लध्यानारुढ़ है इसलिए यदि अब काल करे तो सर्वार्थ सिद्धिके योग्य है, भगवानश्री महावीरस्वामीके मुखारविंदसे यह बात सुनकर विनयसे नम्र हुआ हुआ "राजा श्रेणिक" पुनः हाथ जोड़कर बोला कि हे भगवन्! इस प्रकारकी तपस्या करते हुए उस मुनिको रौद्र ध्यान कैसे हुआ? और इस वक्त शुल्क ध्यान कैसे आया?। केवल ज्ञानसे चराचर सर्व पदार्थोंको और सर्व जीवोंके मनोगत भावोंको जाननेवाले भगवानश्री महावीरस्वामी अपनी अमृतमय वाणीसे संसार दावानलसे तपे हुए जीवोंको शान्त करते हुए बोले कि राजन्! जिस वक्त तुम हमको वन्दन करनेको आ रहेथे उस वक्त जो तुमारे आगे दो सेनापति थे उनके मुखसे अपने पुत्रका पराभव सुना अत एव पुत्रके मोहसे समाधि ध्यानसे पतित होकर साधुपनेको भूल

गया और उन अपने पुत्रके शत्रुमंत्रियोंसे मनही मनमें युद्ध करना प्रारंभ कर दिया और क्रोधके वश होकर वह अपने आपको तो भूलही गया परंतु मनके युद्धकोभी प्रत्यक्षही मानकर उन क्रूर मंत्रियोंके साथ ऐसा लड़ा कि मानो कोई शस्त्रभी हाथमें न रहा परंतु पराभवी आदमीके हाथमें जो कुछभी आजावे वही शस्त्र होजाता है अंतमें प्रसन्नचंद्रने अपने सिरसे मुकुट उतार कर मारना चाहा परंतु जिस वक्त शिरपर हाथ फिराया तो सिरको रुंडमुंड देखकर उसको अपनी पूर्व दशा याद आई और विवेकचक्षु खोलके विचार करने लगा कि अहो धिक्कार है मुझे. मैं कौन हूँ और क्या कर रहा हूँ एक पुत्रके मोहसे मैं अपने आत्माको दुर्गतिका अधिकारी बना रहा हूँ धिक्कार हो ऐसे मोहको इस असार संसारमें कौन किसका पुत्र और कौन पिता. मैं तो अपने शरीरपरभी निर्ममत्व होरहा हूँ फिर मुझे पुत्र और राज्यसे क्या । इसतरह प्रसन्नचंद्र राजर्षि अपने आत्माकी निन्दा करता हुआ वहांही रहकर अपने मनमें हमें धारण करके भक्तिपूर्वक नमस्कार कर अतिचारोंकी आलोचना करके शुभ ध्यानमें लीन होगया और शुक्ल ध्यानरूप अग्निसे, अशुभकर्मरूप घासको भस्म कर दिया ।

इसतरह भगवद्देवके मुखसे प्रसन्नचंद्र राजर्षिका वृत्तान्त सुनकर और विशेष जाननेका जिज्ञासु हुआ हुआ राजा विनयपूर्वक कहने लगा कि हे भगवन्! प्रसन्नचंद्र राजाको छोटी उमरवाले पुत्रको राजगद्दी देकर दीक्षा लेनेका क्या कारण बना सो कृपाकर फरमावें? करुणानिधि भगवान श्रीमहावीरस्वामी बोले कि हे राजन्! प्रसन्नचंद्र राजर्षिका वृत्तान्त लोगोंके चित्तको बड़ाही आश्चर्यकारी है अत एव सावधान होकर सुनो । पोतना

नामके नगरमें–सौम्यतासे चंद्रमाके समान और न्यायवानोंमें रामचंद्रके समान "सोमचंद्र" नामका राजा राज्य करता था और शीलादि गुणोंको धारण करनेवाली "धारणी" नामकी उसकी प्रिया थी. एक दिन राजा "सोमचंद्र" और उसकी रानी "धारणी" दोनोंही गवाक्षमें बैठे थे "धारणी" अपने प्राणेशके मस्तकमें एक सुफ़ेद बाल देखकर बोली कि हे स्वामिन्! दूत आगया। राजा सोमचंद्र चकित हो चारों तर्फ देखने लगा और नजर न आनेसे बोला कि हे प्रिये कहां है? मुझे नहीं देख पड़ता, रानीने राजाके सिरमेंसे वह श्वेत बाल उखाड़ कर राजाके सामने रख दिया. और बोली कि स्वामिन् युवावस्थाको नष्ट करनेवाले यह यमराजाका दूत आया है और कोई नहीं, योवनको घात करनेमें शस्त्रके समान उस श्वेत बालको देखकर राजा मनमें खेद करने लगा।

राजाका उदास चित्त देखकर "धारणी" रानी मुस्कराकर बोली स्वामिन् एक बाल देखकरही बुढ़ापेसे डरने लगे यदि आपको शरम आती हो तो मैं नगरमें ढिंढोरा पिटाकर निषेध करा दूँगी कि राजाको कोईभी आदमी बुड्ढा न कहे. यह सुनकर राजा सोमचंद्र बोला कि प्रिये मैं इस बालको देखकर खेद नहीं करता किन्तु इसका कारण यह है कि मेरे पूर्वजोंने तो अपने सिरमें श्वेत बाल आनेसे पहलेही व्रतग्रहण कर लिया था, याने दूसरी अवस्थामेंही व्रत अंगीकार कर लिया और मैं तो श्वेत केश होनेपरभी विषयोंमें आसक्त हूँ, खैर अब अवश्यही इस असार संसारको त्याग कर संन्यस्त ग्रहण करूंगा परंतु दूध पीनेवाले इस बालक पुत्रको किसतरह राज्यभार दूँ, अथवा व्रतकी इच्छावाले मुझको पुत्रसे और राज्यसे क्या कार्य है तू आपही

इस अपने पुत्रका पालन करना । धारणी बोली हे स्वामिन् मैं तो आपके विना क्षणमात्रभी ठहरनेको समर्थ नहीं क्योंकि पतिव्रता स्त्रियोंका यह मुख्य कर्तव्य है कि चाहे दुःख हो या सुख परंतु अपने पतिकी सेवामें तत्पर रहना अत एव मैं तो आपकी छायाके समान आपके साथही चलूँगी, आप इस बालकको राजगद्दी दे दीजिये, यह प्रसन्नचंद्र बालक वनके वृक्षोंके समान आपही अपने भाग्यसे परवस्त होजायगा, मुझे आपके विना पुत्रसे क्या ? मेरे तो आपही सर्वस्व हैं । सोमचंद्रने संसारसे विरक्त होकर उस अपने बाल पुत्र प्रसन्नचंद्रको राजगद्दीपर बैठाके अपनी प्राणप्यारी प्रियाके साथही तापसोंके आश्रममें जाकर संन्यस्त धारण कर लिया और दुष्तप तपस्या करने लगा, पारनेमें केवल शुष्क फलफूलादि ग्रहण करता है परंतु अपनी प्रिया "धारणी" के लिए तो प्रेमतंतुओंसे बँधा हुआ जंगलोंमेंसे पके हुए और मधुर मधुर फल लाता है । धारणीभी अपने पति सोमचंद्रकी भक्तिमें तत्पर हुई हुई उसके लिए रातके समय कोमल कोमल तृणोंकी शय्या बिछा देती और दिनके समय एरंडोंका तेल निकालकर रातको दीपक जला देती है जंगलमेंसे गायका गोबर लाकर आश्रमको लीपती है, इसतरह पतिसेवा करते हुए कुछ समय व्यतीत होगया सोमचंद्रभी दुष्तप तपस्या करते हुए इस दरजेपर पहुँच गया कि जंगलमें रहनेवाले क्रूर जातिके व्याघ्रादि पशुभी उसके तपसे शान्त होगये, हरिणादि पशु तो उसके पास आकर बैठ जाते हैं, ऐसे उग्र तपको करते हुए सोमचंद्र तापसको कुछ समय व्यतीत होनेपर पूर्व अवस्थाके संयोगसे जो "धारणी" को गर्भ रहा हुआ था वह अब बढ़ने लगा, और फलफूलादिका आहार करनेवाली सुकुमार बिचारी "धा-

2

रणी" गर्भकी व्यथाको सहन करती हुई समयको व्यतीत करती है नव मास पूर्ण होनेपर धारणीने कांतिसे सूर्यके समान तेजोमय पुत्रको अपने आश्रममें जन्म दिया, उस वक्त वहांपर वस्त्र न होनेसे सोमचंद्र तापस जंगलमें जाकर वृक्षोंकी वल्कल (छाल) ले आया और उस वल्कलसे लपेट कर उस बालकको बड़ी हिफाजतसे रक्खा और इसी लिए सोमचंद्रने उस बालकका नामभी वल्कलचीरी रक्खा ।

वल्कलचीरीके उत्पन्न होते समय "धारणी" की कुक्षीमें दुस्सह्य वेदना होने लगी परंतु उस निर्जन जंगलमें बिचारा सोमचंद्र, कहांसे तो डाक्टर और कहांसे दवा लासकता था, "धारणी" का शरीर बड़ा सुकुमार था अत एव वह इस दुस्सह्य व्यथाको सहन न करसकी, पैदा होतेही बिचारे वल्कलचीरीपर दैवने ऐसा कोप किया कि बिचारी धारणीके प्राण हरन कर लिये अब मृत मातृक वल्कलचीरीको पालन करनेके लिये सोमचंद्र तापसने एक तापसनी धात्रीको देदिया परंतु बिचारे वल्कलचीरीपर दुर्दैवका ऐसा कड़ा कोप था कि उसको पालन करनेवाली वह तापसीभी थोड़ेही दिनोंमें काल करगई, अब सोमचंद्र तापस स्वयं उस बालकको बड़ी हिफाजतसे रखता है जब उसको भूख लगती है तब गायका दूध मँगाकर पिलाता है और उसे हर वक्त अपने साथही रखता है, पिताके इस तरह पालनेसे वल्कलचीरी कुछ दिनोंमें अन्नके खाने योग्य होगया । अब बालक वल्कलचीरी सारे दिनभर मृगोंके बच्चोंके साथ क्रीडा करता है और सोमचंद्र जंगलमें जाकर नीवर नामके धान्य (तृणधान्य) कोलाकर स्वयं रसोई बनाकर उसको जिमाता है, इसतरह सोमचंद्र तापसने, गौवोंके दूध, वनधान्य तथा वन फलादियोंसे पोषण करके उस वल्कलचीरीको

यौवन अवस्थाके सन्मुख किया, अब वल्कलचीरीभी अपने पिता सोमचंद्रकी सेवा करनेमें बड़ा प्रवीण होगया जंगलमें जा कर पिताके लिए पक्के हुए मधुर मधुर फलादि ले आता है, और पाँव दबाना विगैरह वैयावचभी बड़ी अच्छीतरह करता है, वल्कलचीरी जन्मसेही सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य व्रतको धारण करनेवाला था क्योंकि उस जंगलमें पैदा होकर वल्कलचीरीने–स्त्रीको देखना तो दूर रहा परंतु नाम मात्रभी नहीं सुनाथा अत एव वह इतनाभी न समझता था कि स्त्री क्या वस्तु है और किसे कहते हैं । केवल तापसों तथा उस जंगलमें रहनेवाले मृगादि जानवरोंको वर्जके और किसीभी व्यक्तिको न जानता था क्योंकि उसने जन्मसे वेही देखेथे । अब इधर प्रसन्नचंद्रका हाल सुनो जिसको कि बचपनमेंही सोमचंद्रने राजगद्दीपर बैठाके तापसव्रत ग्रहण कर लियाथा । वह प्रसन्नचंद्र अपने शुभ कर्मके प्रभावसे थोड़ेही दिनोंमें बड़ा होशियार और राज्यकार्यमें प्रवीण होगया बचपनसेही दयालू तथा जितेंद्रिय हुआ । प्रसन्नचंद्र एक दिन अपनी राजसभामें बैठा हुवा था उस वक्त बाहिरसे एक आदमीने आकर उसके पिता सोमचंद्र तथा लघु भ्राता वल्कलचीरीका वृत्तान्त कह सुनाया । प्रसन्नचद्रं सुनकर बड़ा खुशी हुवा और अदृष्ट अपने लघु भ्राता वल्कलचीरीसे मिलनेकी उत्कंठा बढने लगी । वल्कलचीरीके गुणोंको सुनकर राजा प्रसन्नचंद्रके हृदयरूप समुद्रमें प्रेमकी तरंगें उठने लगीं और पितासेभी अधिक उस अदृष्ट छोटे भाईको देखनेकी अत्यन्तही उत्कंठा बढ़ गई परंतु उससे मिलनेका कोईभी उपाय न देखकर शहरमेंसे एक बड़े चतुर चित्रकारको बुलवाया और उसे आज्ञादी कि जो पिता सोमचंद्रके पाद पद्मोंसे पवित्र वन है वहां जाकर पिताके चरण कमलोंमें हंसके समान मेरे छोटे

भाई वल्कलचीरीका चित्र खींचलाओ । चित्रकार राजाकी आज्ञा मस्तकपर चढ़ाकर चित्रके लिखनेकी सामग्री लेकर जंगलको चल-दिया और सोमचंद्र तापसके पाद पद्मोंसे पवित्र जो वन था वहां पर जापहुँचा ।

वल्कलचीरीका चित्र उस चित्रकारने ऐसी खूबीसे लिखा कि उस चित्रमें केवल बोलनेकीही त्रुटिथी । साक्षात् वल्कलचीरीके प्रतिबिंबके समान उस चित्रको लेकर चित्रकार राजसभामें आया और वह मनोहर चित्र राजा प्रसन्नचंद्रको समर्पित कर दिया उस रमणीय चित्रको देखकर राजा प्रसन्नचंद्र मनमें बड़ा हर्षित होकर विचारता है कि यह चित्र कुछ पिताके चेहरेके साथही मिलता है अत एव शास्त्रकारोंका जो यह कथन है कि—आत्मा वै जायते पुत्रः श्रुतिरेषाहि नान्यथा। सो सत्यही है, प्रसन्नचंद्र उस मनोज्ञ चित्रकी ओर टकटकी लगाकर देखना रहा परंतु वल्कलचीरीके वल्कल (वृक्षकी छाल)के वस्त्र देखकर प्रसन्नचंद्रके नेत्रोंमें अश्रुभर आये और मनमें विचार करने लगा कि खैर अब पिताकी तो वृद्धावस्था है अत एव उन्हें संन्यस्त उचितही है परंतु ऐसी युवावस्थामें मेरा छोटा भाई अरण्यमें रहकर कष्टको सहन करे और मैं राज्यसंबंधि सुखरूप सरोवरमें हंसके समान मग्न रहूँ यह सर्वथाही अनुचित है, परंतु वनवासी जीवोंके समान व्यवहारको न जाननेवाले लघु भ्राता वल्कलचीरीको शहरमें लाना यहभी बड़ाही दुष्कर कार्य है और उसके विना मुझे राज्यमेंभी कष्ट है । इसतरह प्रसन्नचंद्र राजाने अनेक प्रकारके संकल्पविकल्प करके एक उपाय शोध निकाला । पोतना पुरमें जो बड़ी बड़ी चतुरा वैश्यायें थीं उन्हें बुलवाया और उनको यह आज्ञा देदी कि तुम मुनिवेष धारण करके और कुछ खाँडके लड्डू लेकर उस

वनमें जाओ जहां कि, सोमचंद्र तापस रहते हैं और उन्होंके पास जो वल्कलचीरी नामा छोटा मुनि है उसे अपने मीठे मीठे वचनों तथा शरीरके स्पर्श आदिसे लुभाकर यहां ले आओ । वेश्यायें राजाकी आज्ञा पाकर मुनिका वेष धारण कर और थोड़ेसे खाँडके लड्डू लेकर उसी जंगलमें चली गई जहांपर सोमचंद्र तापस रहता था । अभी वेश्यायें रस्तेमेंही जा रहीथीं दैवयोगसे उधर वल्कलचीरीभी दूसरे रस्तेसे अपने पिता सोमचंद्रके लिए बिल्वादिके फल लेकर आरहा था अत एव वल्कलचीरीको वेश्याओंकी भेट रस्तेमेंही होगई ।

वल्कलचीरीने मुनिवेषको धारण करनेवाली उन वेश्याओंको देखकर दूरसेही अभिवन्दन किया और पूछा कि हे महर्षियो! आप कहांसे आरहे हो और कहां जाते हो? वल्कलचीरीका यह प्रश्न सुनकर वेश्याओंने उसे पैछान लिया कि उस चित्रके सदृश ऋषिपुत्र तो यही होना चाहिये । अत एव उन्होंने यह उत्तर दिया कि हम पोतना नामके आश्रमसे आये हैं और आज तो तुमारेही पाहुने हैं तुम हमारा क्या आतिथ्य करोगे?। वल्कलचीरी बोला कि हे महर्षियो! मैं जंगलमें जाकर अपने पिताके लिए ये मधुर मधुर फल लाया हूँ सो आप इन्हें खाओ मैं अपने पिताके लिए और ले आऊँगा । वेश्याओंने वल्कलचीरीके हाथसे फल लेलिये और कहने लगीं कि ओहो! ये तो बड़े निरस फल हैं इन्हें कौन खावे देखो हमारे आश्रमके वृक्षोंके कैसे मधुर फल हैं तुम इनको खाकर देखो । वेश्याओंने यह कहकर वल्कलचीरीका हाथ पकड़कर एक वृक्षके नीचे बैठा लिया और शहरसे जो खाँडके मोदक ले गई थीं उनमेंसे दो लड्डू उसके हाथमें पकड़ा दिये । वल्कलचीरीभी उन लड्डूओंको खाकर बिल्वादिके

फलोंसे बिलकुल परांमुख होगया । क्यों न हो, जिसने आजन्मसे गुड़तकभी नहीं देखा उसे एकदम खाँडके फल मिल जानेपर ऐसा होनाही था । वेश्याओंने वल्कलचीरीको एकान्तमें ले जाकर अपने अंगका स्पर्श कराया और उसके हाथ पकड़कर अपनी छातीपर रक्खे । स्त्रियोंका शरीर स्वभावसेही कोमल होता है उसमेंभी छातीका भाग विशेष कोमल होता है अत एव कोमल शरीरका स्पर्श होनेसे वल्कलचीरी बोला कि, हे महर्षियो! तुमारा शरीर इतना कोमल क्यों है? और तुमारी छातीपर दोनों ओर पके हुए आम्रफलके समान कोमल कोमल उन्नत भाग क्यों हैं?

अपने हाथोंसे वल्कलचीरीके अंगको स्पर्श करती हुई वेश्यायें बोलीं कि हे ऋषिकुमार! हमारे आश्रममें ऐसे वृक्ष हैं कि उनके फल खानेसे कठोरसे कठोरभी शरीर हमारे जैसा कोमल होजाता है और उन्हीं फलोंके खानेसे छातीपर दोनों तरफ ऐसा कोमल मांस बढ़ जाता है अत एव हे ऋषिकुमार! तुमभी इन निरस फलोंका खाना छोड़के हमारे सदृश बनो। व्यवहारको न जाननेमें पशुके समान बिचारे "वल्कलचीरी" ने खाँडके लड्डूओंसे मोहित होकर उन धूर्त वेश्याओंके साथ जानेका संकेत कर लिया। अब "वल्कलचीरी" वहांसे अपने आश्रममें जाकर पिताके लिए जो जंगलसे फल वगैरह लाया था उन्हें रखकर वेश्याओंके कहे हुवे संकेत स्थानपर जा पहुँचा, वेश्यायें उसे साथ लेकर अभी चलनेकी तैय्यारीही करती थीं इतनेमेंही कहीं अरण्यसे आते हुए दूरसे सोमचंद्र तापसको देखा और उसके शापके डरसे "वल्कलचीरी" को वहांही छोड़कर तित्तर बित्तर होकर भाग गई । सोमचंद्रको आश्रममें जानेपर

विचारा "वल्कलचीरी" उस निर्जन वनमें उन वेश्याओंको ऐसे ढूंडता फिरता है जैसे कि, कोई अपना सर्वस्व खोकर और पागल होकर फिरा करता है।

इसतरह जंगलमें भ्रमण करते हुए "वल्कलचीरी" ने एक रथ जाता हुआ देखा, देखकर शीघ्रही उसके पास जाकर रथवालेको ऋषि समझकर अभिवन्दन किया रथवाननेभी उससे पूछा कि हे कुमार! तू कहां जायगा? "वल्कलचीरी" बोला कि हे महर्षे! मैं पोतनापुर नामके आश्रममें जाना चाहता हूँ, रथवान बोला—मुझेभी वहांही जाना है अत एव तू मेरे साथ साथ चलाचल पोतना आश्रममें पहुँच जायगा, यह सुनकर "वल्कलचीरी" रथवालेके साथ साथ होगया। मार्गमें जाते हुए रथमें बैठी हुई रथवालेकी स्त्रीकोभी "वल्कलचीरी" तात कहकरही बारबार बुलाता है, रथवानकी स्त्री अपने पतिसे कहने लगी कि हे स्वामिन् मैं तो स्त्री हूँ और मेरे साथ यह तापस कुमार असंबद्ध वाक्य क्यों बोलता है? रथवान बोला कि हे प्रिये! इसने आजतक स्त्रीको नहीं देखा क्योंकि उत्पन्न होकर आजतक जंगलमेंही रहा है और इस भयानक जंगलमें स्त्रीके आनेका कामही क्या, अत एव स्त्री पुरुषमें भेद न समझने वाला यह मुग्ध तापस कुमार तुझेभी पुरुषही समझता है। रथमें जुड़े हुए घोड़ोंको देखकर "वल्कलचीरी" रथवानसे बोला कि हे तात! इन मृगोंको आप क्यों तकलीफ देते हो? ऋषियोंको योग्य नहीं कि किसी जीवको तकलीफ देना अत एव आप इन मृगोंको छोड़ दो, रथवान मुस्करा कर "वल्कलचीरी" को बोला कि हे मुनिकुमार, इन मृगोंका धर्म यही कार्य करनेका है अत एव इसमें कुछ दूषण नहीं। "रथवानने" "वल्कलचीरी" को खानेके लिए दो खाँडके लड्डू

दिये उनको खाकर "वल्कलचीरी" वड़ा खुश हुआ और बोला कि हे महर्षे, ऐसे फल मैंने पहलेभी पोतनापुर आश्रममें रहने वाले मुनियोंके दिये हुए खाये थे और उन फलोंके खानेसेही मेरा चित्त बिल्वादि फलोंसे खिन्न हो गया है अत एव पोतनापुर आश्रममें जाता हूँ।

इसतरह जंगलमें बात करते हुए जारहेथे, इतनेमेंही रस्तेमें एक चोर मिल गया और रथवानका अकस्मातही उसके साथ बड़ा भारी युद्ध हुआ परंतु रथवान बड़ा बलवान था अत एव उसने चोरको शीघ्रही पछाड़ दिया, मरते समय वह चोर बोला कि हे रथवान! तेरे जैसा बलिष्ट पुरुष मैंने आजतक कहीं नहीं देखा यद्यपि तू मेरा वैरी है तथापि मैं तेरी वीरतापर मुग्ध हूँ अत एव मेरे पास बहुतसा धन है इसे तू ग्रहण कर ले, यह कहकर चोर तो यमराजका अतिथि बन गया और वह धन उन तीनों जनोंने उठाकर रथमें भर लिया और वहांसे चल पड़े। कुछ अरसेमें जब "पोतनापुर" आ पहुँचे तब "रथवान" वल्कलचीरीको कहने लगा कि, हे तापसकुमार! जिस पोतनापुर आश्रममें तू जाना चाहता था, वह पोतनापुर आश्रम यही है। यों कह कर रथवानने "वल्कलचीरी" को कुछ धनभी दिया और मुस्करा कर बोला कि, हे तापसकुमार! इस आश्रममें विना द्रव्यके कहींभी आश्रय नहीं मिलता अत एव तूने जिस आश्रममें जाना हो वहांपर जाकर प्रथम इसमेंसे कुछ धन दे देना जिससे तुझे वहांपर आश्रय मिल जाय। "वल्कलचीरी" रथवानके दिये हुए धनको लेकर शहरमें जा घुसा और ऋषि बुद्धिसे नगरवासी सब मनुष्योंको अभिवन्दन करता हुआ फिरने लगा और कितनेक नगरवासी जन कुतूहलसे उसके पीछे पीछे फिरते हैं,

इस प्रकार सारे नगरमें अपनी विडंबना कराता हुआ "वल्कलचीरी" एक वेश्याके मकानमें प्रवेश कर गया और उस मकानको आश्रम समझकर वेश्याको ऋषि बुद्धिसे अभिवन्दन करके इस प्रकार प्रार्थना करने लगा कि, हे महर्षे! मैं तुमारे आश्रममें ठहरना चाहता हूँ और उसके किरायेमें तुम यह द्रव्य ग्रहण करो। वेश्या बोली कि, हे मुनिकुमार! यह तुमाराही आश्रम है तुम खुशीसे ठहरो। यों कहकर वेश्याने एक नापित (हजाम) को बुलवाया और उसको चार पैसे देकर कहा कि इसकी हजामत और नख वगैरह ठीक बनाओ, "वल्कलचीरी" की इच्छा नहीं थी तोभी नापितने वेश्याकी आज्ञासे वल्कलचीरीकी हजामत वगैरह बनादी।

अब हजामत होनेके बाद वेश्या "वल्कलचीरी" को स्नान कराकर उसका मुनिवेष उतारके रेश्मी वस्त्र तथा अच्छे अच्छे आभूषण पहराने लगी। "वल्कलचीरी" का वेष जब वेश्या उतारने लगी तब "वल्कलचीरी" बोला कि, हे महर्षे! आजन्मसे जो मेरा यह मुनिवेष है इसे तुम मत उतारो। "वल्कलचीरी" के निषेध करनेपरभी वेश्या न मानी और उसका मुनिवेष उतारकर रेश्मी वस्त्र पहना दिये। "वल्कलचीरी" को यह कार्रवाई बिलकुल अच्छी न लगतीथी अत एव वह विचारा बच्चोंके समान रोने लगा उस वक्त वेश्या कहने लगी कि, हे मुनिकुमार! इस आश्रममें आनेवाले अतिथियोंका ऐसाही उपचार पद होता है और जो अतिथि इस उपचारको कराता है उसकोही यहां रहना मिलता है। वेश्याका यह कथन सुनकर "वल्कलचीरी" वहां रहनेके लोभसे वश किये हुए पशुके समान मस्तकको धुनता हुआ वेश्या जो जो कराती है सो सो करता है। वेश्याने "वल्कलचीरी" के शरीरकी मालस कराके उसके बालोंको सुगंधिवाले

तेल फुलेल लगाये । उनकी सुगंधि अच्छी लगनेसे "वल्कलचीरी" भी अपने मनमें कुछ कुछ खुश होने लगा । इस प्रकारसे "वल्कलचीरी" को अनेक तरहके विभूषण तथा वस्त्रादिसे विभूषित करके वेश्याने अपनी एक लड़कीको उसके साथ विवाह दिया । अब वे वधु-वर दोनों एक स्थानपर बैठे हुवे ऐसे शोभते हैं कि, जैसे सरोवरके किनारे हंस-हंसनीका जोड़ा । उन वधु-वरोंका पाणी ग्रहण होते समय सब वेश्यायें मिलकर जब मंगल गीत गाने लगीं तब "वल्कलचीरी" चकित होकर विचार करने लगा कि, ये ऋषि लोग सब मिलकर क्यों चिल्लाते हैं? उसका कुछ तात्पर्य न समझ कर "वल्कलचीरी" मनमें घबराने लगा और कानोंपर हाथ रख लिए । इधर मुनिवेषको धारण करनेवाली वेश्यायें जो राजाकी आज्ञासे "वल्कलचीरी" को लेने जंगलमें गईथीं उन्होंने आकर राजा प्रसन्नचंद्रको यह समाचार दिया कि हे, राजन्! जंगलमें जाकर हमने "वल्कलचीरी" को ऐसा लुभाया था कि, जिससे वह, हमारे साथ आनेको तैयार होगयाथा और हमारे किये संकेत स्थानपरभी आगयाथा परंतु दूरसे आते हुवे सोमचंद्र तापसको देखकर और उसके शापके भयसे हम उस बिचारे "वल्कलचीरी" को वहांही छोड़कर भाग आई हैं और "वल्कलचीरी" अब पिताके आश्रममें न जायगा परंतु हमकोही ढूंढ़ता हुआ बिचारा उस निर्जन वनमें फिरता होगा क्योंकि वह हमारे दिये हुए लड्डू खाकर ऐसा वश होगया है कि जैसे मधुर गायन सुनकर वनवासी मृग होजाता है ।

वेश्याओंसे यह समाचार सुनकर राजा प्रसन्नचंद्रने अपने मनमें बड़ा पश्चात्ताप किया और सोचने लगा कि, हा हा मैंने दुरात्माने यह क्या अकार्य किया कि, जिससे पिता-पुत्रका वि-

योग होगया और मैंभी उस अपने छोटे भाईको प्राप्त न कर सका। हा पितासे जुदा पड़ा हुआ वह बिचारा "वल्कलचीरी" जलहीन मीनके समान कैसे जीवेगा? मैंने पिताके साथसे "वल्कलचीरी" का वियोग कराया यह बड़ा भारी अनुचित कार्य हुआ। हा, पिताको ऐसी घोर तपस्यामें अब कौन आधारभूत होगा?। इस प्रकार प्रसन्नचंद्र राजा मनमें बड़ा दुःखित हो रहाथा इधर वेश्याके घरपर "वल्कलचीरी" का विवाह होनेसे बाजे बज रहेथे बाजोंका आवाज सुनकर प्रसन्नचंद्र राजा बोला कि मेरे दुःखसे सारा नगर दुःखित होरहा है और यह ऐसा खुशी कौन है? कि जिसके घरपर नौबतखाना बज रहा है। अथवा सब संसार मतलबका है कौन किसीके दुःख सुखमें स्यामिल होता है जैसे कि लौकिक कहावतभी है कि–दुनिया दुरंगी मुकरबे सराय, कहीं खैर खूबी कहीं हाय हाय। यहां आजका दिन मेरे लिए दुःखदाई और अन्यके लिए सुखदाई होरहा है। यों कहकर "राजा प्रसन्नचंद्र" मौन रह गया परंतु उसका यह कथन सारे नगरमें ऐसा फैल गया कि जैसे पानीके ऊपर तेलका बिंदु फैल जाता है। वेश्याकोभी यह बात मालूम होगई कि, राजाके चित्तमें किसी प्रकारका खेद है और मेरे घरपर बजते हुए बाजोंसे राजाको बिलकुल नफ़रत होती है। अत एव वेश्याने शीघ्रही राजसभामें जाकर राजासे यह निवेदन किया कि, स्वामिन्! प्रथम मेरे यहां निमित्तको जाननेवाला एक आदमी आयाथा उसने मुझे कहाथा कि, ऋषिवेषमें और व्यवहारको न जाननेवाला जो कोई पुरुष तेरे मकानपर आवे तो उसके साथ अपनी लड़कीको व्याह देना और वह निमित्तियेका बताया हुआ युवा पुरुष व्यवहारको न जाननेवाला आज मेरे घर आया है और उसके साथ मैंने अपनी लड़कीका

विवाह कर दिया है अत एव विवाहोत्सवमें मेरे घरपर बाजे बजतेथे मुझे कुछ खबर न थी कि आपके चित्तमें खेद है। आप मेरा यह अपराध क्षमा करें। वेश्याका यह कथन सुनकर राजाने उसको देखनेके लिए अपने नौकर भेजे। उन्होंने पहले "वल्कलचीरी" को देखा हुआथा अत एव उन्होंने वेश्याके घर जातेही वल्कलचीरीको पैछान लिया और राजासे आकर कह दिया कि, हजूर आपके छोटे भाई वनवासी वल्कलचीरीही हैं। यह सुनकर राजाके हृदयमें हर्षका पार न रहा और उसी वक्त हाथी सजवाकर वधुके साथही "वल्कलचीरी" को अपने मकानपर बुलवा लिया और उसको धीरे धीरे संसार संबंधि सब व्यवहार सिखाके अपने राज्यमेंसे आधा राज्य देकर अच्छे अच्छे कुलवान राजाओंकी कंन्यायें उसके साथ परणाईं। इस प्रकार छोटे भाईको संसार संबंधि सुखोंमें जोड़कर "राजा प्रसन्नचंद्र" अपने आपको कृतार्थ मानने लगा। सर्व व्यवहारको जाननेवाला "वल्कलचीरी" भी अब विषयसुख समुद्रमें मग्न होकर समयको व्यतीत करता है। एक दिन "वल्कलचीरी" को मार्गमें सहायता करनेवाला रथवान, चोरसे मिले हुए धनको लेकर बजारमें निकला और उसे बेचनेके लिए एक दुकानपर गया, बेचते समय उसमेंसे कितनीक वस्तुयें लोगोंने पैछान लीं, अत एव दुकानदारोंने कोतवालको बुलाकर उस आदमीको पकड़वा दिया। कोतवाल उस आदमीके हाथ बाँधकर राजसभामें लेगया। उस वक्त "वल्कलचीरी" भी सभामें राजाके पासही बैठा था। "वल्कलचीरी" ने उस रथवानको देखकर शीघ्रही पैछान लिया और राजासे कहकर उसको छुड़वा दिया क्योंकि कृतज्ञ पुरुष चिर कालतकभी अपने उपकारीके उपकारको नहीं भूलते। अब इधर

"सोमचंद्र" तापस उस जंगलमें प्राणोंसे प्रिय अपने पुत्रको न देखकर "मोहसे शोकसमुद्रमें मग्न होकर वन वनमें फिरने लगा," परंतु "वल्कलचीरी" का कहींभी पता न लगा। एक दिन "प्रसन्नचंद्र" ने उस जंगलमें आदमी भेजकर अपने पिता सोमचंद्रको खबर कराई कि "वल्कलचीरी" यहां आगया है और बड़े आनंदसे समय व्यतीत करता है। यह समाचार सुनकर सोमचंद्रके हृदयमें कुछ शांति हुई परंतु पुत्रके मोहसे रोते रोते आँखोंमें पड़ल आगयेथे अत एव अब पारणेके समयभी अन्य ऋषियोंकेही लाये हुए फलफूलादिको भक्षण करता है। इस प्रकार बारह वर्ष व्यतीत होनेपर एक दिन अर्ध रात्रिके समय सुखशय्यामें पड़ा हुआ पिताभक्त "वल्कलचीरी" विचार करता है कि अहो! मैं कैसा मंदभाग्य हूँ पैदा होतेही माताके काल करनेपर मुझे अपना सर्वस्व समझकर पिताने उस निर्जन वनमें बड़े कष्टसे पाला और एक क्षणमात्रभी किसीका विश्वास न करके मुझे हमेशा अपने साथही रखतेथे परंतु मैंने दुरात्माने उनको वृद्धावस्थामें तपसेभी अधिक, वियोगजन्य दुःखसे दुःखित किया क्योंकि जब मैं उन्हें तपस्यामें सहायता देनेके लिए समर्थ हुआ तब यहां आकर विषयाशक्त हो सानंद समय व्यतीत करने लगा और कीड़ीसे हाथीके समान करनेवाले तथा मेरे वियोगसे दुःख संतापको अनुभव करनेवाले पिताको भुला दिया। हा धिक्कार है मुझ पापीष्टको जो ऐसे उपकारी पिताको कुछभी सहायता न देसका बल्कि सहायताके बदलेमें उलटा कष्ट दिया। बस अब प्रातःकाल होनेपर इस जंजालको छोड़कर उसी जंगलमें जाकर पूर्वकी तरह पिताकी सेवा करूंगा, ऐसे विचार करते करते "वल्कलचीरी" को शुबह होगया। "वल्कलचीरी" प्रातःकाल सुख

शय्यासे उठकर राजसभामें गया और अपने बड़े भाई प्रसन्नचंद्रसे नम्रतापूर्वक बोला कि हे राजन्! मुझे पिताके दर्शनोंकी अत्यन्त उत्कंठा लगी हुई है अत एव मैं उसी जंगलमें जाना चाहता हूँ जो पिताश्रीके चरणारविंदोंसे पवित्र है । यह सुनकर राजा "प्रसन्नचंद्र" बोला कि हे भाई पिताके दर्शनोंकी चाहतो मुझेभी है क्योंकि, जब पिताश्रीने संन्यस्त ग्रहण कियाथा तबसे मैंनेभी उन्होंके दर्शन नहीं किये अत एव चलो दोनोंही चलें । यह कहकर राजाने सवारी तैयार कराई और दोनोंही सपरिवार पिताके दर्शनोंके लिए नगरसे चल पड़े । कुछ देरके बाद उसी जंगलमें जा पहुँचे जहांपर सोमचंद्र तापस रहताथा, "वल्कलचीरी" उस जंगलकी शोभा देखकर राज्यलक्ष्मीको तृण समान समझने लगा और वहांके सरोवरोंको देखके विचारता है कि, ये वही सरोवर हैं जिनमें मैं हंसके समान क्रीड़ा किया करताथा ये वही वृक्ष हैं जिनके फल मैं वानरके समान तोड़कर खाताथा ये भैंसेंभी वही हैं जिनका मैं दूध माताके समान पीता रहा और ये मृगभी वही हैं जिनके साथ भाईके समान मैं क्रीड़ा करता रहताथा । ऐसे विचार करता हुआ "वल्कलचीरी" प्रसन्नचंद्रसे कहने लगा कि, हे राजन्! नेत्रोंको आनंद देनेवाले इस जंगलमें जो मुझे सुख है उसका मुझेही अनुभव है उसमेंभी पिताकी शुश्रूषारूप जो सुख है वह मुझे राज्यमें कहां प्राप्त होसकता है? ।

इस प्रकार बातें करते हुए दोनो भाई पिताके आश्रममें प्रवेश कर गये और पिताके समीप जाकर उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया । प्रसन्नचंद्र अपने मस्तकसे पिताके चरणोंको स्पर्श करता हुआ बोला कि हे तात! आपका पुत्र प्रसन्नचंद्र आपको नमस्कार

करता है, प्रसन्नचंद्रका बोल पैछानकर सोमचंद्र तापसने बड़े हर्षपूर्वक अपने पुत्रके शरीरपर हाथ फेरा, प्रसन्नचंद्रभी पिताके हस्त स्पर्शसे पुलकांकित होगया, "वल्कलचीरी" भी भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हुआ बोला कि हे तात! आपके चरणकमलोंमें हंसके समान यह "वल्कलचीरी" प्राप्त होगया है। "वल्कलचीरी" के वचनको सुनकर सोमचंद्र हर्षसे फूला न समाया और "वल्कलचीरी" को मस्तक चुंबनपूर्वक ऐसा आलिंगन किया कि जैसे वर्षाकालका मेघ पर्वतको करता है। सोमचंद्रके नेत्रोंमें हर्षके अश्रु आगये उन अश्रुओंके ऊष्ण पानीसे उनकी आँखोंके पड़ल दूर होगये। इस समय रवि शशीके समान कांतिवाले अपने दोनों पुत्रोंको देखकर "सोमचंद्र" को जो आनंद हुआ वह अकथनीय है। "प्रसन्नचंद्र" और "वल्कलचीरी" दोनोंही 'सोमचंद्र" के सामने बैठ गये, "सोमचंद्र" ने अपने दोनों लड़कोंसे स्नेहपूर्वक कुशल प्रश्न किया कि हे पुत्रो! तुमने सुखसे तो समय व्यतीत किया? प्रसन्नचंद्रने हाथ जोड़कर उत्तर दिया कि हे तात! आपके चरणोंके प्रतापसे सर्व प्रकारसे हमने सुखमय समय व्यतीत किया है परंतु मैंने पापीष्टने आपके साथसे "वल्कलचीरी" का वियोग कराकर आपको बड़ा भारी कष्ट पहुँचाया मुझे इस बातका बड़ाही खेद होता है इस पापसे मेरा कहां छुटना होगा?। "प्रसन्नचंद्र" इस प्रकार पिताके सामने अपने आत्माकी निंदा कर रहाथा, उस वक्त "वल्कलचीरी" उटजके अन्दर प्रवेश करके अपने उत्तरीयसे तापसोंके पात्रोंकी प्रतिलेखना करने लगा और प्रतिलेखना करते करते "वल्कलचीरी" के मनमें यह चिंता उत्पन्न हुई कि इसतरह पात्रोंकी प्रतिलेखना मैंने कभी पहलेभी की है? इस प्रकारकी ईहा पोह करते हुए "वल्कल-

चीरी" को जाति स्मृति ज्ञान उत्पन्न होगया। अब "वल्कलचीरी" जाति स्मृति ज्ञानसे अपने देव तथा मनुष्य संबंधि भवोंको प्रत्यक्ष देखने लगा, पूर्वभवमें जो साधुपना पालाथा तथा जिनेश्वर देवके धर्मकी जो आराधना की थी उसको देखकर वल्कलचीरी, परम वैराग्य रसमें मग्न होगया और भवको नाश करनेवाली भावनायें भाने लगा। इसतरह भावनामें रूढ होकर "वल्कलचीरी" ने धर्मध्यानको व्यतिक्रमण कर और शुक्ल ध्यानमें स्थित होकर लोकालोकको प्रकाश करनेवाले तथा चराचर पदार्थोंको जनानेवाले केवल ज्ञान और केवल दर्शनको प्राप्त कर लिया। तत्कालही देवताओंने यतिवेष देकर केवलज्ञानकी महिमा की, सर्व परियायों सहित सर्व पदार्थोंको जाननेवाले केवलज्ञानी महात्मा "वल्कलचीरी" ने पिता तथा भाईकी अनुकंपासे सुधाके समान धर्म देशना दी, केवलज्ञानी महात्माकी धर्मदेशना सुनकर सोमचंद्र तथा प्रसन्नचंद्रको यथार्थ बोध हुआ और महात्मा वल्कलचीरीको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर श्रावकधर्मको अंगीकार करके राजा प्रसन्नचंद्र, तो अपने स्थानपर चला गया। भगवान महावीरस्वामी "श्रेणिक" राजासे कह रहे हैं कि हे राजन्! उस समय हमभी विहार करते हुए पोतना नगरके उद्यानमें समवसरे। प्रत्येकबुद्ध महात्मा वल्कलचीरी, अपने पिताको दीक्षा देकर हमारे पास छोड़कर अन्यत्र विहार कर गया और "प्रसन्नचंद्र" भी "वल्कलचीरी" की देशनासे स्थिर वैराग्यवान हुआ हुआ पोतनापुर नगरको चला गया। कुछ दिनोंके बाद विरक्तात्मा राजा "प्रसन्नचंद्र" ने अपने छोटेसे पुत्रको राज्यभार देकर हमारे पास आकर दीक्षा ग्रहण कर ली।

जब भगवान महावीरस्वामी, "प्रसन्नचंद्र राजर्षि" का

आश्चर्यजनक तथा परम पवित्र चरित्र सुना चुके तब श्रेणिक राजाने आकाशसे उतरते हुए देवताओंको देखा और हाथ जोड़कर भगवानसे पूछा कि हे भगवन्! आकाशसे यह देवसंपात क्यों होरहा है? भगवान महावीरस्वामी बोले कि हे राजन्! जिस "प्रसन्नचंद्र" राजर्षिका चरित्र सुना है उसी प्रसन्नचंद्रको केवलज्ञान हुआ है और उसके केवलज्ञानकी महिमा करनेके लिए ये देवतालोग आकाशसे उतर रहे हैं।

विक्रम संवत् १९७२ में झघड़िया तीर्थपर श्रीआदीश्वर
भगवानकी कृपासे यह "वल्कलचीरी" महात्माका
परम पवित्र चरित्र आज मगसिर सुदी तृती-
याके दिन समाप्त हुआ। अब
श्रीजंबुस्वामीका चरित्र शुरु
होता है।

॥ दूसरा परिच्छेद ॥

भवदत्त और भवदेव.

महात्मा वल्कलचीरी तथा श्रीप्रसन्नचंद्र राजर्षिका चरित्र जब भगवान श्रीमहावीरस्वामी कह चुके तब श्रेणिक राजाने भगवानसे फिर प्रश्न किया कि हे भगवन! आपके शासनमें अन्तिम केवलज्ञानी कौन होगा? भगवान बोले हे राजन! यह जो तेरे सामने समवसरणमें ब्रह्मदेवलोकमें रहनेवाला इंद्रके समान ऋद्धि-वाला और चार देवियों सहित विद्युन्माली, नामका देव बैठा है, यह आजसे सातवें दिन देवसंबंधि आयुको पूर्ण करके तेरेही नगरमें "ऋषभदत्त" नामा शेठके यहां, जंबु नामा पुत्रपने उ-त्पन्न होकर अन्तिम केवली होगा। श्रेणिक बोला हे स्वामिन्! यदि इस देवका आजसे सातवें दिन चवन है तो इसका इतना अक्षीण तेज क्यों मालूम होता है? क्योंकि देवताओंका तेज च-वनसे ६ मास पहलेही क्षीण होजाता है परंतु यह देव तो बड़ाही तेजस्वी देख पड़ता है। जगद्गुरु भगवान बोले कि राजन! एकही भव धारण करके मुक्ति प्राप्त करनेवाले देवताओंके तेज क्षयादि चवनके चिन्ह अंतकालतकभी नहीं बदलते। जिस वक्त भगवान महावीरस्वामी "श्रेणिक राजा" से कह रहेथे उस समय जंबुद्वी-

षका अधिष्ठाता "अनादृत" नामका देव समवसरणमेंसे उठकर आनंदपूर्वक नृत्य करने और ऊँचे ऊँचे स्वरसे बोलने लगा कि अहो मे उत्तमं कुलं अहो मे उत्तमं कुलं । यह आश्चर्य देखकर राजा श्रेणिक, फिर भगवानसे बोला कि हे स्वामिन्! यह देव अपने कुलकी प्रशंसा क्यों करता है? । भगवान बोले कि हे राजन्! इस तुमारे राजगृह नामके नगरमें विश्वमें प्रख्यात "गुप्त" नामका एक शेठ रहता था, उस शेठके दो लड़के थे उनमेंसे बड़ेका नाम "ऋषभदत्त" और छोटेका नाम "जिनदास" था। "ऋषभदत्त" सदाचारमें बड़ा प्रवीण था और "जिनदास" द्यूतादि व्यसनोंसे दूषित था। इस प्रकार उन दोनों भाइयोंमें चंद्रमा और राहूके समान भेद था । "ऋषभदत्त" "जिनदास" को व्यसनोंसे हठानेके लिए बहुतही समझाता परंतु "जिनदास" कुसंगतसे बाज न आताथा अत एव "ऋषभदत्त" ने एक दिन समस्त जनोंके सामने "जिनदास" को घरसे बाहर निकाल दिया और पुकारके यह कह दिया कि आजसे इसके साथ मेरा कोई संबंध नहीं इसलिए इसकी फरियाद कोई मेरे पास न लावे, "ऋषभदत्त" ने जिसदिनसे यह प्रतिज्ञा कीथी उसदिनसे "जिनदास" को अपने महल्लेमेंभी न घुसने दिया। "जिनदास" अब जुवारियोंकेही पास रहने लगा, एक दिन जुवा खेलते समय जुवारियोंके साथ "जिनदास" की लड़ाई हो पड़ी, जुवारियोंने मिलकर "जिनदास" को खूब मारा बल्कि यहांतक होगया कि "जिनदास" के बचनेकी कोई आशा न रही, "जिनदास" निराश हुआ हुआ जीनेकी आशा छोड़कर जमीनपर पड़ा हुआ तड़फने लगा और जुवारी सब इधर उधर भाग गये। यह समाचार किसी आदमीने परमश्रावक "ऋषभदत्त" को आकर सुनाया और

कहा कि हे "ऋषभदत्त!" तू तो बड़ा दयाधर्मी है और सर्व साधारण जीवोंपर दया करता है परंतु आज तेरे भाई "जिन-दास" की क्या हालत होरही है तुझे कुछभी खयाल नहीं? और उसकी दीनावस्थापर कुछभी दयाभाव नहीं आता? । इस प्रकारके वचन सुनकर दयामय हृदयवाला "ऋषभदत्त" शीघ्रही "जिनदास" के पास गया और उसको घभराया हुआ देखकर बोला कि हे भाई! तू घभरा मत मैं तुझे घर लेजाकर औषधा-दिसे अच्छा करूँगा । "ऋषभदत्त" के मधुर वचन सुनकर "जिनदास" हाथ जोड़कर बोला कि हे भाई! मुझे अब जीनेकी आशा नहीं है मैं अब आपसे इतनाही चाहता हूँ कि आप मेरे अपराध क्षमा करें और मुझे परलोकके वास्ते आराधना करावें। "ऋषभदत्त" "जिनदास" की विशुद्ध लेस्या देखकर बोला कि हे भाई! यदि तेरा ऐसाही विचार है तो सर्व पदार्थोंपर निर्मम होकर स्वच्छ मनसे पंचपरमेष्टी नमस्कारका स्मरण कर। इस प्रकार कहकर "ऋषभदत्त" ने "जिनदास" को अनशन-पूर्वक आराधना कराई। इस प्रकारके पंडित मृत्युसे काल करके "जिनदास" बड़ी भारी ऋद्धिवाला अनादृत नामा यह जंबु-द्वीपका अधिपति देव हुआ है और हमारे मुखसे इसने यह सुना कि "जंबु" नामा "ऋषभदत्त" का पुत्र अंतिम केवली होगा। अत एव भावी अंतिम केवली मेरे कुलमें होनेवाले हैं यह जान-कर और अपने कुलको पवित्र समझके प्रशंसा करता है।

राजा श्रेणिक, भगवान महावीरस्वामीसे फिर पूछने लगा कि हे स्वामिन्? इस विद्युन्माली देवको सर्व देवोंमें सूर्यके समान अति तेजस्वी होनेका क्या कारण? । करुणासमुद्र भगवान महा-वीरस्वामी, सुधाके समान वाणीसे बोले कि हे राजन्? इसी

जंबुद्वीपके भरतक्षेत्रमें मगध नामका देश है उस देशमें "सुग्राम" नामका एक गाँव है उस गाँवमें 'आर्यवानराष्ट्रकूट' इस नामका एक ग्रामीण रहता था 'रवती' नामकी उसकी पत्नी थी 'रवती' को अपने पतिके साथ संसार संबंधि सुख भोगते हुए दो लड़के पैदा हुवे, बड़े लड़केका नाम 'भवदत्त' और छोटेका नाम 'भवदेव' था। दोनोंही लड़के स्वभावसे बड़े सुशील थे उनमेंसे 'भवदत्त' ने तो यौवन अवस्थाके प्राप्त होते समयही 'सुस्थिताचार्य' महाराजके पास भवांभोधिको तारनेमें तरीके समान प्रव्रजा (दीक्षा) ग्रहण कर ली और विनयपूर्वक गुरुमहाराजके पास विद्याध्ययन करने लगा। 'भवदत्त' प्रज्ञावान होनेसे तथा गुरुमहाराजकी 'कृपा' होनेसे थोड़ेही समयमें श्रुत पारग होगया और अनेक प्रकारकी तपस्यायें तथा अभिग्रह धारण करता हुआ गुरुमहाराजके साथ विचरता है, आचार्यमहाराजके साथ औरभी बहुतसे साधु थे एक दिन एक साधुने आचार्यमहाराजसे यह प्रार्थना की कि हे भगवन्! इस गाँवमें मेरे कुटंबी जन रहते हैं और उनमें मेरा एक छोटा भाई है वह मेरे ऊपर बड़ाही स्नेहवाला है और प्रकृतिसेभी बड़ा भद्रिक है इसलिए आप कृपा कर मुझे आज्ञा देवें तो मैं वहां जाकर उसे बोध करके संसारचक्रमेंसे निकाल लाऊँ। गुरुमहाराज उस शिष्यकी प्रशस्तभावना देखकर बड़े प्रसन्न हुए और एक बड़ा साधु उसके साथ करके उसे गाँवमें जानेकी आज्ञा दे दी, अब वह मुनिभी गुरुमहाराजकी आज्ञा पाकर बड़े हर्षके साथ अपने भाईको प्रतिबोध करनेके लिए नगरको चल पड़ा, मगर वहां जाकर देखता है तो छोटे भाईका विवाह होरहा है, अनेक प्रकारके धवलमंगल होरहे हैं और भाईभी कामदेवके सहोदर लग्नमें मग्न होरहा है, कोई स्त्री उसके हाथमें

कँगना बाँधती है और कोई पीठी मसल रही है । इस प्रकारके विवाहोत्सवमें मग्न होकर उसने दीक्षा लेनी तो दूर रही परंतु अपने बड़े भाईका स्वागत तकभी न किया और ऐसा होगया कि मानो भाईको जानताभी नहीं । इस प्रकारकी आचरणायें देखकर मुनिराज साश्चर्य भग्नोत्साह होकर वापस चला आया और गुरुमहाराजके पास आकर सर्व वृत्तान्त सुना दिया । उस वक्त भवदत्त मुनि बोला कि अहो! ऐसा निःस्नेह होगया तुमारा भाई? जिसने कि तुमारा बड़े भाईका घरपर जानेपरभी आदर सत्कार न किया, क्या गुरुओंकी भक्तिसेभी विवाहोत्सवका कौतुक अधिक श्रेयस्कर है? जो उस उत्सवको त्याग कर अपने बड़े भाईके साथ न आया। 'भवदत्त' की इस बातको काट कर उनमेंसे एक साधु बोला कि हे भवदत्त! तुम तो पंडित हो भई तुम्हारी क्या बात है खैर तुमारेभी एक छोटा भाई है यदि तुम उसे दीक्षा दिवाओगे तो हमभी देखेंगे । यह सुनकर 'भवदत्त' बोला कि हाँ यदि गुरुमहाराज मगध देशमें पधारेंगे तो यह कौतुक मैं तुम्हें दिखाऊँगा । दैवयोग गुरुमहाराज विहार करते हुए किसी दिन मगध देशमें पधारे क्योंकि जैनमुनियोंकी स्थिति वायुके समान एकत्र नहीं होती । एक दिन 'भवदत्त' गुरुमहाराजको नमस्कार कर हाथ जोड़कर बोला कि भगवन्! यहांसे थोड़ी दूरके फासलेपर मेरी जन्मभूमिका गाँव है यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं अपने स्वजनोंसे मिल आऊँ । गुरुमहाराजने 'भवदत्त' को श्रुतपारग जानकर उसे एकलेही जानेकी आज्ञा दे दी । गुरुमहाराजकी आज्ञा प्राप्त करके 'भवदत्त' अपने सांसारिक स्वजनोंके घर अपने छोटे भाई 'भवदेव' को प्रतिबोध करनेके लिए गया, परंतु वहां जाकर देखता है तो पूर्वकेसीही गरबड़

नजर आई 'नागदत्त' की पुत्री 'नागिला' के साथ 'भवदेव' का विवाहोत्सव हो रहा है और सबही स्वजन संबंधि विवाहोत्सवमें लगे हुए हैं। 'भवदत्त' को दूरसे आते हुए देखकर कितने एक अन्य आदमियोंने कहा कि देखो आनंदमें आनंद, जो अपने छोटे भाईके विवाहोत्सवमें 'भवदत्त' मुनिभी आ पधारे, यों कहकर प्रासुक पानीसे 'भवदत्त' के चरणोंका प्रक्षालन किया और उस पानीको तीर्थका जल समझकर सब स्वजन संबंधियोंने अपने मस्तकपर लगाया और सब जनोंने 'भवदत्त' मुनिके चरणोंको अपने मस्तकसे स्पर्श करके भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। 'भवदत्त' ने धर्मलाभपूर्वक कहा कि हे भाइयो! तुम्हें तो विवाहके कार्योंसे फुरसत नहीं है हमभी अन्यत्र जाते हैं यों कहकर जब 'भवदत्त' वहांसे चल पड़ा तब सब स्वजनोंने उन्हें आहारकी विज्ञप्ति की 'भवदत्त' नेभी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव देखकर उनकी विनति मंजूर कर ली और वहांसे एषणीय याने कल्पनीय आहार अपने पात्रमें वोर लिया। उस समय 'भवदेव' बहुतसी स्त्रियोंके साथ मकानके अंदर बैठा हुआ अपने कुलाचारके अनुसार अपनी स्त्री नागिलाका शृंगार कर रहाथा। 'भवदेव' ने मोगरेके पुष्पोंसे ग्रथितमालाओंसे 'नागिला' की वेणीको बाँधकर तथा 'नागिला' के कपोलस्थलोंपर मानो कामदेवकी विजय प्रशस्तिके समानही कस्तूरीके रंगसे पत्र वल्लरी चित्रके अभी 'नागिला' के कुचोंका याने स्तनोंका मंडन करही रहाथा कि इतनेमेंही किसीसे 'भवदत्त' का आगमन सुन पाया, परमस्नेही बड़े भाईका आना सुनकर उसके दर्शनोंकी उत्सुकतासे ऐसा हर्षित हुआ कि जैसा जूवेमें जीत पाकर जूवारी होता है और आधी शृंगारी हुई अपनी स्त्रीको छोड़कर

शीघ्रही भाईके दर्शन करने चल पड़ा. उस वक्त 'भवदेव' को बहुतसी स्त्रियोंने बाहर जानेसे रोका और यह कहा कि हे 'भवदेव'?

इस प्रकार अर्धमंडितवधूको छोड़कर तुमारा बाहर जाना उचित नहीं, परंतु 'भवदेव' ने बधिरके समान उनका एकभी वचन न सुना। मैं अपने बड़े भाई 'भवदत्त' महामुनिको वंदन करके अभी पीछे आता हूँ यह कहता हुआ मृगके समान छाल मारता हुआ उन स्त्रियोंके बीचसे शीघ्रही निकल गया और जहांपर 'भवदत्त' मुनि खड़ा था वहां जाकर उनके पैरोंमें पड़के भक्ति सहित नमस्कार किया। अनगारशिरोमणि 'भवदत्तर्षि' अपने छोटे भाईको देखकर बोला कि हे 'भवदेव'? मेरी झोलीमें बहुत भार होगया है इसलिए थोड़ी दूर तक यह पात्र पकड़ले यों कह 'भवदेव' के हाथमें घीका भरा हुआ पात्र दे दिया और स्वजनोंको धर्मलाभ देकर वहांसे चल निकला। 'भवदेव' भी घीसे भरे हुए पात्रको हाथमें लेकर भाईके साथ साथ चल पड़ा, औरभी बहुतसे स्त्री पुरुष 'भवदेव' के समानही मुनिराजके पीछे चल पड़े मुनिनेभी उन्हें पीछे जानेके लिए न कहा क्योंकि उनको यह उचितही था इसलिए उन जनोंमेंसे कोईभी आदमी पीछे न फिरा परंतु गाँवसे कुछ दूर जाकर मुनिराजको वंदन करके स्वयमेवही लोग पीछे फिरने लगे इस प्रकार सबही स्त्री-पुरुषोंको पीछे लौट जानेपर भद्रात्मा 'भवदेव' विचारने लगा कि विनाही विसरजन किये ये लोग पीछे जारहे हैं परंतु मुझे इस प्रकार भाईको छोड़कर पीछे जाना उचित नहीं क्योंकि एक तो ये मेरे सगे भाई हैं और मेरे ऊपर परम स्नेह रखते हैं दूसरे इनका घने दिनोंमें यहां आना हुआ है। अब

खबर है? फिर यहां कभी आयेंगे या नहीं और झोलीके भारसे इन्होंने मेरे हाथमें यह घीका पात्र दिया है यदि मैं इस समय इस घीके पात्रको इन्हें देकर घरपर चला जाऊँ तो यह सर्वथाही अनुचित है। इसलिए इनके स्थानपरही छोड़कर पीछे फिरना योग्य है 'भवदेव' इस प्रकारके संकल्पविकल्प करही रहाथा इतनेमेंही यह पीछे लौट न जाय यह समझकर 'भवदत्त' मुनिने गृहस्थपनेकी बातें शुरु कर दीं और कहने लगा कि हे भवदेव! ये वेही वृक्ष हैं जिनपर हम तुम चढ़कर वानरके समान क्रीड़ा किया करते थे। ये वेही सरोवर हैं जहांपर हम दोनोंही बचपनमें कमलनियोंके हार बनाकर अपने गलेमें पहनतेथे और यह गाँवके पर्यन्तकी वही भूमि है जहांपर बाल्यावस्थामें हम दोनों वालूरेतके मकान बनाकर क्रीड़ा किया करतेथे। 'भवदत्तर्षि' रस्तेमें इस प्रकारकी बातोंमें लगाकर अपने छोटे भाई 'भवदेव' को वहांतक ले आया जहांपर सब साधुओंसहित आचार्य महाराज विराजमान थे, छोटे भाईको साथमें लिए हुए 'भवदत्तर्षि' को दूरसे आता देखकर वसतिके दरवाजेमें खड़े हुए क्षुल्लक (छोटे) साधु खुशीसे मुस्कराकर परस्पर बोले कि देवकुमारके समान अपने भाईको दीक्षा देनेके लिए ले तो आये धन्य है इन महात्माओंको, इन्होंने जैसा कहाथा वैसाही कर दिखाया, उसके छोटे भाई 'भवदेव' को देखकर आचार्य महाराज 'भवदत्त' मुनिसे बोले कि हे 'भवदत्त।' यह युवा पुरुष तुमारे साथ कौन आया है? 'भवदत्त' बोला कि भगवन्! दीक्षा लेनेकी इच्छावाला यह मेरा छोटा भाई है। आचार्य महाराजने 'भवदेव' से पूछा क्यों भद्र! दीक्षा ग्रहण करनेकी इच्छा है? 'भवदेव' ने सोचा कि यदि मैं इस वक्त गुरुमहाराजके सामने इन्कार करूँ तो

बड़े भाईका वचन मिथ्या होजायगा इसलिए अब तो हाँ कहनाही योग्य है, यह विचार कर 'भवदेव' ने शीघ्रही गुरुमहाराजके समक्ष हाँ कहदिया। आचार्य महाराजनेभी 'भवदेव' को विधिपूर्वक दीक्षा देकर दो साधुओंके साथ अन्यत्र विहार करा दिया। इधर 'भवदेव' के घर 'भवदेव' के न आनेपर खलबलिसी मचने लगी और कितनेएक आदमी उसे ढूंढने निकल पड़े। 'भवदत्त' के पास आकर बोले कि महाराज! 'भवदेव' आपके साथ आयाथा इस बातकी हमें बड़ी खुशी है परंतु वह अभीतकभी घरपर नहीं आया। इसलिए हम लोग बड़े घभराते हैं और विरहिणी चक्रवाकीके समान उसकी नवोढा वधूभी बड़ीही दुखी होरही है उसके नेत्रोंसे जलधारा बंद नहीं होती, हम स्वप्नमेंभी इस बातकी संभावना नहीं करते कि हमें पूछे विना 'भवदेव' कहीं जाय परंतु इस वक्त न मालूम वह कहां गया और कैसे गया।

इस समय हम 'भवदेव' को न देखते हुए सबके सबही जीते हुएभी मृतक समान हैं अत एव भगवन् अपने छोटे भाईको बताकर हमें जीवित करो। यह सुनकर 'भवदत्तर्षि' ने मिताक्षरोंमें उत्तर दिया कि भाई यहांसे तो आतेही पीछे चला गया, उसवक्त भाईके हितकी आकांक्षासे 'भवदत्त' मुनिको मिथ्याभी बोलना पड़ा मगर मुनिराजका आशय मिथ्या बोलनेका न था उनका आशय एकान्त भाईका हित करनेमेंही था अत एव वह उनका मिथ्या बोलना कुछ गिनतीमें नहीं, 'भवदत्त' मुनिके उत्तरको सुनकर दीन मुखवाले होकर परस्पर यह कहते हुए सबही जने पीछे लौट गये कि भाई जल्दी चलो शायद 'भवदेव' दूसरे रास्तेसे गया हो। इधर भाईकी दाक्षण्यतासे दीक्षा ग्रहण करके 'भवदेव' अपने भाईकेही साथ रहता है परंतु 'भव-

देव' अपनी वधू नागिलाकाही हृदयमें ध्यान करता रहता है, इस प्रकार 'भवदेव' ने भाईके उपरोधसे बारह वर्षतक सशल्य दीक्षा पाली परंतु नागिलाका ध्यान हृदयसे न गया, महर्षि 'भवदत्त' एक दिन अनशन पूर्वक काल करके सौधर्म देव लोकमें महर्धिवाला देव जा बना। अब 'भवदेव' की कुछ आशा लता सफल होनेलगी, भाईके काल कर जानेपर 'भवदेव' मनमें विचारता है कि नागिला मेरे ऊपर बड़ी प्रेमवाली है और मैंभी उसे चाहता हूँ परंतु अति कष्टदायक दोनोंका विरह होरहा है, मैं इस दुष्कर दीक्षा व्रतके कष्टसे इतना दुःखित नहीं जितना प्राणप्यारी 'नागिला' के विरहसे दुखी हूँ। मेरा भाव बिलकुल दीक्षा लेनेका न था मगर भाईके उपरोधसे लेनी पड़ी सो तो अब काल कर गये।

अब मुझे इस व्यर्थ कष्टसे क्या अब तो बिचारी 'नागिला' की जाकर खबर लूँ न जाने विचारी निराधार 'नागिला' हिमसे संतप्त हुई कमलनीके समान तथा ग्रीष्मके तापसे कुमलाई हुई लताके समान किस प्रकार समय व्यतीत करती होगी? आश्चर्य है कि मैं उस बिचारीसे दिल खोलकर दो बातें तकभी न कर सका, खैर यदि अभी भी उस प्राणप्यारी, मृगाक्षीको जीती हुई जा पाऊँ तोभी गृहस्थ संबंधि सुखोंका कुछ अनुभव करूँ, इस प्रकारके संकल्पविकल्प करके 'भवदेव' वृद्धसाधुओंसे विनाही पूछे गच्छसे बाहर निकल पड़ा और शीघ्रही अपने मनोरथ पूर्ण करनेके लिए सुग्राम गाँवमें जा पहुँचा, गाँवके बाहर भगवद्देवका एक प्राचीन मंदिर था 'भवदेव' उस मंदिरके समीपही ठहर गया, कुछ देर बाद एक बूढ़िया ब्राह्मणीके साथ वहांपर एक युवती स्त्री आई और प्रथम मंदिरमें दर्शन कर पश्चात् 'भवदेव' मुनिको

उसने भक्तिपूर्वक वन्दन किया, 'भवदेव' बोला कि भद्रे! यहांपर 'राष्ट्रकूट आर्यवान' रहताथा और 'रेवती' नामकी उसकी धर्मपत्नी थी वे अभी जीते हैं या नहीं? यह सुनकर उस स्त्रीने उत्तर दिया कि महाराज! उन्हें तो काल किये बहुत समय व्यतीत होगया, 'भवदेव' ने पूछा कि आर्यवानके पुत्र 'भवदेव' ने जिस स्त्रीको छोड़कर दीक्षा ली थी वह स्त्री है या नहीं? यह सुनकर उस स्त्रीने विचार किया कि शायद हो न हो यह 'भवदेव' ही हो यह सोच कर वह बोली महाराज! 'भवदेव' आपही हैं क्या?

'भवदेव' बोला भद्रे तूने भलिभाँति मुझे पैछान लिया मैं वही 'भवदेव' हूं जो अपनी स्त्री नागिलाको छोड़कर 'भवदत्तमुनि' के साथ चला गया था, स्त्री बोली महाराज! यदि आपने उसे त्याग कर दीक्षा ग्रहण करली थी तो अब आपको यहां आनेका क्या कारण पड़ा? 'भवदेव' बोला भद्रे? उसवक्त मैंने दीक्षा भावसे ग्रहण न की थी केवल भाईकेही आग्रहसे मैंने दुष्कर व्रतको ग्रहण किया था और इसवक्त भाईकी मृत्यु होजानेसे मैं निरंकुश होकर उस 'नागिलाको' देखनेके लिए आया हूँ, (सज्जनो? यह स्त्री वही 'नागिला' है जिसे 'भवदेव' विवाहतेही छोड़ गया था और साधुपनेमेंभी जिसका रात दिन स्मरण किया करता था परंतु बारह वर्ष व्यतीत होजानेसे तथा रूपरंगमें फेरफार होजानेसे 'भवदेव' उसे अब पैछान न सका, 'नागिला' भी इस बातको समझ गई कि बहुत काल व्यतीत होनेसे तथा आयुके परिवर्तन होनेसे इसने मुझे पैछाना नहीं। 'नागिला' 'भवदेव' के मनोगत भावको जानकर उसे धर्ममें स्थिर करनेके लिए अपने आत्माको प्रगट करती हुई बोलि कि हे पवित्राशय! जिस

नवोढ़ा वधू 'नागिला' का तुमने त्याग किया था वह 'नागिला' मैंही हूँ इतने समयमें योबनके व्यतीत होनेसे मेरे अंदर अब वह लावण्यता नहीं रही, जिसकी लालसासे तू यहां आया है। हे महाशय! घोरातिघोर नरकके साक्षीभूत विषयरूप कामदेवके शस्त्रोंका प्रहार न सहन करके स्वर्ग तथा मोक्षके सुख देनेवाली ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप रत्नत्रयीको छोड़कर मेरे अंदर सुखकी आशा न कर, क्योंकि तेरे लिए तो मैं घोरपापकी खान हूँ, यदि मुझे ग्रहण करेगा तो पापके सिवाय तेरे हाथ और कुछ न आयगा, इसलिए हे मुने! इस पापके गर्तसे बचकर गुरुमहाराजके पास जा और मेरे ऊपर राग करनेसे जो पाप लगा है गुरुमहाराजसे उसकी आलोचना करके सर्व सौख्यदायक यतिव्रतको आराध! 'नागिला' इस प्रकार मधुर वचनोंसे 'भवदेव' को बोध कर रहीथी, इतनेमेंही जो ब्राह्मणी 'नागिला' के साथ थी उसका लड़का वहां आया और अपनी मातासे कहने लगा हे मातः! मैं अभी एक जिजमानके यहां खीर खाकर आया हूँ और दूसरेके घरसे निमंत्रण आया है परंतु मेरे पेटमें पानी पीने तकभी जगह नहीं और यदि दूसरे घर जीमनेको न जाऊँ तो दक्षिणा मारी जायगी।

इसलिए यह उपाय ठीक है कि तू मेरे सामने एक भाजन रख दे मैं उस भाजनमें खाई हुई खीरको वमन करके दूसरे जिजमानके घर जीमके दक्षिणा ले आऊँ और पश्चात् भूख लगनेपर इस वमन की हुई खीरको खालूँगा क्योंकि मेराही ऊच्छिष्ट भोजन मुझे खानेमें कोई हरकत नहीं। ब्राह्मणी बोली कि हे पुत्र! इस निन्दनीय कर्म करनेसे लोकमें तेरी बहुत निन्दा होगी, ऐसा करना ठीक नहीं।

'भवदेव' बोला हे ब्रह्मपुत्र! वमन की हुई वस्तुके खानेसे तू कुत्तेसेभी निकृष्ट गिना जायगा, यह सुनकर 'नागिला' 'भवदेव' को कहने लगी कि महात्मन्! यदि तू ऐसा जानता है और कहता है तो तू स्वयं मुझे वमन करके ग्रहण करनेको क्यों तैयार हुआ है? मांस अस्थि रुधिर और मलमूत्रसे पूर्ण वमनसे भी अति निन्दनीय मुझे ग्रहण करनेकी इच्छावाला तू नहीं निकृष्टताको प्राप्त होगा? तू पर्वतपर जलते हुवे अग्निको देखता है मगर अपने पांवोंमें दहकती हुई ज्वालायें नहीं देख पड़तीं? क्योंकि तू स्वयं तो पतित होरहा है और दूसरोंको शिक्षा देता है, जिस पुरुषने अपने आत्माको उपदेश न दिया हो याने स्वयं तो अधमाचरण करता हो और दूसरोंको उपदेश देनेमें चतुर हो वह आदमी मनुष्यकी गिनतीमें नहीं आसकता, मनुष्यकी गिनतीमें वही आदमी आसकता है जो स्वयं अपने आत्माको उपदेश लगाकर परको उपदेश करे। 'नागिला' के इस प्रकारके वचनोंको सुनकर 'भवदेव' साधुपनेको स्मरण करके बोला कि हे भद्रे! तूने मुझे भलिप्रकार शिक्षा देकर पापरूप कूवेसे बचाया और जात्यंधके समान उन्मार्गमें जाते हुएको सरल रस्ता बता दिया। अब मैं स्वजन संबंधियोंसे मिलकर गुरुमहाराजके पास जाकर व्रतके अतिचारकी आलोचना लेके दुष्तप तपको तपूँगा। 'नागिला' बोली स्वजनोंसे मिलकर क्या लेगा? स्वजन संबंधि सबही तेरे स्वार्थमें विघ्नभूत होजायेंगे।

इसलिए परमार्थ संबंधि गुरुमहाराजके चरणोंमें जाकर अतिचारकी आलोचना करके संयमकी आराधना कर। और मैंभी साध्विओंके पास जाकर दीक्षा ग्रहण करूँगी।

इस प्रकारके 'नागिला' के वचनोंसे बोधको प्राप्त होकर 'भवदेव' ने गुरुमहाराजके पास जाकर अतिचारोंकी आलोचना की और चिरकालतक यतिधर्मकी आराधना कर काल करके सौधर्म देवलोकमें देवपने उत्पन्न जा हुआ ।

॥ तीसरा परिच्छेद ॥

सागरदत्त और शिवकुमार.

इधर 'भवदत्त' का जीव स्वर्गसे चल कर महाविदेह क्षेत्रकी पुष्कलावती विजयमें 'पुंडरीक' नामकी नगरीमें 'व्रजदत्त' नामा चक्रवर्तीकी पटरानी 'यशोधरा' की कुक्षीमें पुत्रपने अवतरा। 'भवदत्त' के जीवको 'यशोधरा' की कुक्षीमें आनेसे 'यशोधरा' को समुद्रमें स्नान करनेका दोहला उत्पन्न हुआ, 'व्रजदत्त' चक्रवर्तीने समुद्रके सदृश 'सीता' नामकी नदीमें क्रीड़ा कराकर 'यशोधरा' का दोहला पूर्ण किया, अब पूर्ण मनोरथा देवी यशोधरा सुखसे समयको व्यतीत करती हुई वर्षाकालकी लताके समान लावण्यको धारण करती है। नव मास पूर्ण होनेपर 'यशोधरा' देवीने अद्भुत रूपवाले पुत्रको जन्म दिया, 'यशोधरा' को गर्भ होते समय सागरमें स्नान करनेका दोहला उत्पन्न हुआथा इसलिएही 'व्रजदत्त' राजाने उस पुत्रका नाम 'सागरदत्त' रक्खा देवकुमारके समान 'सागरदत्त' को पाँच धायमातायें बड़ी प्रीतिपूर्वक पालती हैं, 'सागरदत्त' कुमार नन्दन वनकी भूमिमें कल्पवृक्षके अंकूरके समान वृद्धिको प्राप्त

होने लगा, कुछ समयके बाद 'सागरदत्तकुमार' बोलनेको समर्थ हुआ और सुवर्णके दंडेका सहारा लेकर उठने बैठने लगा. इस प्रकार बढ़ता हुआ तथा मित्र जनोंके साथ क्रीड़ा करता हुआ 'सागरदत्तकुमार' विद्याभ्यास करनेके योग्य हुआ, राजाने भी अच्छे प्रवीण कलाचार्यको बुलाकर 'सागरदत्त' को कलाभ्यास करनेके लिए सुपुर्द कर दिया।

'सागरदत्तकुमार' ने थोड़ेही समयमें कलाचार्यके पाससे इसतरह कलायें ग्रहण कर लीं जैसे मुसाफिरजन कूवेसे पानी ग्रहण कर लेता है। 'सागरदत्त' पुरुषकी संपूर्ण कलायें ग्रहण करके चंद्रमाके समान सब जनोंके नेत्रारविंदोंको आनंदित करता हुआ यौवनावस्थाको प्राप्त हुआ, 'व्रजदत्त' चक्रवर्तीने सागरदत्तकुमारके योग्य बहुतसी राजकन्याओंका पाणीग्रहण उसके साथ करा दिया, उन राजकन्याओंके साथ 'सागरदत्त' संसारसंबंधिसुखोंका अनुभव करता है।

एक दिन वर्षाऋतुमें अपने महलके ऊपर 'सागरदत्त' अपनी स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा कर रहा था उस समय आकाशमें एकदम मेरु पर्वतके समान और अद्भुत आकारवाला मेघमंडल चढ़ आया, उसकी सुन्दरताको देखकर 'सागरदत्त' विचारने लगा कि देखो कैसी इसकी रमणीयता है। जैसा वरनन शास्त्रोंमें मेरु पर्वतका किया है, वैसेही आकारवाला यह मेघमंडल देख पड़ता है, इसका सौन्दर्य कोई अजबही ढंगका मालूम होता है। 'सागरदत्त' उस मेघमंडलमें एकाग्रदृष्टी लगाकर उसके सौन्दर्यकी विचित्रताको देख रहा था इतनेमेंही प्रचंड वायुके जोरसे वह अभ्रमंडल पानीके 'बुद्बुद' के समान वहां परही नष्ट हो गया, 'सागरदत्त' की दृष्टी वहांही लगी हुईथी उस मेघमंडलकी ऐसी दशा देखकर अल्पकर्मी

'सागरदत्त' विचारता है कि अहो मेरे देखते देखतेही ऐसा मनोहर मेघमंडल पानीके बुदबुदके समान नष्ट हो गया। किसीदिन इस विनश्वर शरीरकाभी यही हाल होगा और चपलाके समान स्वभाववाली संपत्तिका तो कहनाही क्या? जो रंग प्रातःकाल देख पड़ता है वह मध्यान समय नहीं नजर आता और जो मध्यानमें देखते हैं वह संध्या समय नहीं, इसतरह प्रत्यक्षमेंही संसारके पदार्थोंकी अनित्यता देख पड़ती है। इस असार संसारमें कोईभी पदार्थ सार गर्भित तथा नित्य नहीं। अत एव संसार कारागारसे निकलकर विवेक जलसे सिंचित किये हुए मनुष्य जन्मरूपवृक्षका यतिव्रतरूप फल ग्रहण करूँ। 'सागरदत्त' ने इस प्रकार' परम वैराग्य रसमें मग्न होकर दीक्षा ग्रहण करनेके लिए हाथ जोड़कर अपने मातापितासे आज्ञा माँगी। 'सागरदत्त' की बात सुनकर 'व्रजदत्त' राजा बोला कि हे पुत्र! इस वक्त तेरा दीक्षा ग्रहण करना ऐसा है जैसा कि नाटारंगके समय वेदका पढ़ना, क्योंकि इस समय तू युवराजपदवीको विभूषित करता है और थोड़ेही दिनोंमें इस साम्राज्यका मालिक तूही है अत एव राज्यलक्ष्मीको भोगकर व्रत ग्रहण करना उचित है। 'सागरदत्तकुमार' बोला कि पिताजी मैंने राज्यलक्ष्मीका त्याग किया है मुझे राज्यलक्ष्मीसे कुछ काम नहीं मेरे लिए यही राज्यलक्ष्मी है आप कृपा कर मुझे दीक्षा ग्रहण करनेकी आज्ञा दें, मैं संसाररूप कीचड़में फँसना नहीं चाहता। इस प्रकार 'सागरदत्त' के आग्रहरूप कुठारने 'राजा व्रजदत्त' तथा 'यशोधरा' के प्रेमरूप वृक्षको छेदन करडाला, राजाने बड़ी मुस्किलसे 'सागरदत्त' को दीक्षा ग्रहण करनेकी आज्ञा दी। अनेक राजपुत्रोंके साथ 'सागरदत्त' ने श्री सागराचार्य महाराजके पास दीक्षा ग्रहण की। अब 'सागरदत्त मुनि'

विविध प्रकारके अभिग्रहोंको धारण करता हुआ घोर तपस्यायें करने लगा और आचार्य महाराजकी सेवामें रहकर विनयपूर्वक विद्याभ्यास करने लगा। गुरुमहाराजकी कृपासे 'सागरदत्त' थोड़ेही समयमें श्रुतसागरके पारको पा गया। एक दिन दुस्तप तपस्या करते हुए 'सागरदत्त' मुनिको अधिक ज्ञान उत्पन्न हुआ, शास्त्रमें भी कहा है कि न दूरे तपसः किञ्चित्। इधर 'भवदेव' का जीव सौधर्म देवलोकसे देवसंबंधि आयुको पूर्ण करके महाविदेह क्षेत्रमें पूर्वोक्तही पुष्कलावती विजयमें और वीतशोका नामकी नगरीमें 'पद्मरथ' राजाकी रानी 'वनमाला' की कुक्षीमें पुत्रपने उत्पन्न हुआ, मातापिताने उस पुत्रका नाम 'शिवकुमार' रक्खा। अब अनेक प्रकारके प्रयत्नोंसे 'शिवकुमार' का पालनपोषन होता है। इस प्रकार वृद्धिको प्राप्त होता हुआ 'शिवकुमार' कलाभ्यास करनेके योग्य हुआ। मातापिताने 'शिवकुमार' को कलाभ्यास करनेके लिए कलाचार्यके पास छोड़ दिया, 'शिवकुमार' प्रज्ञावान होनेसे थोड़ेही समयमें सर्व कलाओंमें प्रवीण होगया। 'शिवकुमार' को यौवनावस्था प्राप्त होनेपर 'पद्मरथ' राजाने अच्छे अच्छे कुलोंकी राजकन्यायें परणाई। 'शिवकुमार' उन राजकन्याओंसे ऐसा शोभता है जैसे वर्षाकालमें अनेक प्रकारकी लताओंसे वेष्टित वृक्ष शोभता है। एक दिन 'शिवकुमार' सपरिवार अपने महलपर चढ़ा हुआथा उस समय 'सागरदत्त' महामुनि उस नगरके बाह्योद्यानमें आकर ठहरे हुवेथे। जब 'शिवकुमार' अपने महलपर चढ़कर चारों ओर देख रहाथा तब 'सागरदत्त महामुनि' कामसमृद्ध नामा व्यवहारीके घरपर मासक्षपण पारनेके दिन भिक्षा ग्रहण कररहेथे, सुपात्रदानके प्रभावसे कामसमृद्ध व्यवहारीके घर आकाशसे सुनैयोंकी वृष्टि हुई।

'शिवकुमार' महलपर चढा हुआ यह कार्रवाई देख रहाथा अत एव इस प्रकारकी दान महिमा देखकर साश्चर्य महलसे नीचे उतरा और जहांपर 'सागरदत्त मुनिराज' ठहरे हुवेथे वहांपर गया, वहां जाकर महामुनि 'सागरदत्त'को सविनय नमस्कार करके राजहंसके समान उनके चरणकमलोंमें बैठ गया। संपूर्ण श्रुतको धारण करनेवाले महामुनि सागरदत्तनेभी सपरिवार शिवकुमारको विश्वोपकारी जिनेश्वर देवका धर्म समझाया और विशेषतः संसारकी असारता दर्शाई, गुरुमहाराजके वचनामृतको पीकर 'शिवकुमार' बोला कि हे भगवन्! मैंने आजतक बहुतसे साधुजन देखे परंतु आपके मुखारविन्दको देखकर मेरे हृदयमें हर्ष नहीं समाता न जाने कुछ पूर्वभवका संबंध है? चतुर्दशपूर्वको धारण करनेवाले महामुनि 'सागरदत्त' अपने अवधि ज्ञानसे जानकर बोले हे कुमार! पूर्वभवमें प्राणोंसेभी अति प्रिय तू मेरा छोटा भाई था। मैंने तुझे अनिच्छितकोभी संसारके दुःखोंसे बचानेके लिए भवसागरसे तारनेवाली दीक्षा दी थी, उस दीक्षाके पालनेसे हम दोनोंही सौधर्म देवलोकमें याने प्रथम देवलोकमें परमर्द्धिवाले देव हुए और वहांपरभी हमारी दोनोंकी गाढ प्रीति रही। अब इस भवमें मैं स्व और परके विषय समान दृष्टिवाला हूँ और तुझे सरागवान होनेसे पूर्वभवके संबंधसे मेरे ऊपर स्नेह पैदा होता है।

'शिवकुमार' महात्मा 'सागरदत्त'के मुखारविन्दसे अपना पूर्वभवसंबंध सुनकर हाथ जोड़कर बोला कि हे भगवन्! जैसे पूर्वभवमें आपने मुझे दीक्षा देकर संसार संबंधि विषयरूप कीचड़से निकाला था वैसेही अब भी दीक्षा देकर मुझे कृतार्थ करो, 'सागरदत्त मुनि' बोले, यदि दीक्षा ग्रहण करनेकी इच्छा है

तो अपने मातापितासे पूछ ले वे आज्ञा देवें तो खुशीसे दीक्षा ग्रहण कर, 'शिवकुमार' बोला भगवन्! मुझे अवश्य दीक्षा लेनी है जबतक मैं अपने मातापितासे पूछकर आऊँ तबतक मेरे ऊपर कृपा करके आप यहांही रहें, यों कहकर 'शिवकुमार' शीघ्रही अपने महलमें गया और मातापितासे बोला कि हे तात! आज मैंने 'सागरदत्तर्षि' की धर्मदेशना सुनी है उससे मुझे संसारकी असारता मालूम होगई है अत एव अब यह विनश्वर संसारका सुख मुझे भारभूत मालूम होता है, आप मुझे दीक्षा ग्रहण करनेकी आज्ञा दो, मुझे आजसे लेकर मोहान्धकारको नाश करनेमें सूर्यके समान 'सागरदत्त' महात्माकाही शरणा है, 'शिवकुमार' का यह कथन सुनकर उसके मातापिता बोले कि हे वत्स! यौवनावस्थामें व्रत ग्रहण करना यह तुझे सर्वथा अनुचित है क्योंकि तूने अभीतक संसारके सुखोंका अनुभव नहीं किया, यही तो समय तुझे सुख भोगनेका आया है अभीसे तू इतना निर्मम क्यों बनता है? वत्स! हमारे जीवितका आधार मात्र तो केवल तूही है तेरे पीछे हम किसके आधारसे जीवित रहेंगे? इस लिए हे पुत्र यदि तू मातापिताका भक्त है और यदि हमें पूछकर जाना चाहता है तो इस बातमें हमारी जुबानसे ना के सिवाय और कुछभी न निकलेगा। इस प्रकार मातापिताके वचन सुनकर 'शिवकुमार' ने दुःखित होकर वहांही सर्वसावद्यका त्याग करके भाव यतिपना धारण करलिया और यह कहकर कि मैं सागरदत्त महात्माका शिष्य हूँ मौन धारण करलिया, क्योंकि शास्त्रोंमेंभी कहा है कि मौनं सर्वार्थ साधकम्। अब 'शिवकुमार' को खानेपीनेको देते हैं तो कुछभी नहीं ग्रहण करता यदि बहुत आग्रहसे कहते हैं तो यही उत्तर मिलता है कि मुझे कुछभी नहीं रुचता।

शिवकी आकांक्षावाले 'शिवकुमार' पुत्रसे दुःखित होकर राजाने दृढधर्मा नामा एक श्रेष्ठिपुत्रको बुलवाया और उसे पूर्वोक्त वृत्तान्त सुनाके कहा कि हे वत्स! इसके मौन धारणसे हम बड़े दुखी होरहे हैं क्योंकि न तो यह कुछ खाता न पीता अत एव हे वत्स! तू कोई ऐसा उपाय कर जिससे 'शिवकुमार' अन्न, जल ग्रहण करे और किसी तरह संसारमें रहकर हमारे मनोरथोंको पूर्ण करे। यह कार्य करनेपर हम तेरा ऐशान ताजिन्दगी तक न भूलेंगे।

बुद्धिमान 'दृढधर्मा' ने भी राजाकी आज्ञा अंगीकार करली और 'शिवकुमार' के पास जाकर ३ वार नैषेधकी (निस्सीही) कहकर तथा क्रमसे ऐर्यापथिकी (इर्यावही) करके शिवकुमारको द्वादशावर्त वन्दनपूर्वक नमस्कार कर भूमिको प्रमार्जन करके आपकी आज्ञा हो यह कहकर 'दृढधर्मा' 'शिवकुमार' के सामने बैठ गया। दृढधर्माकी यह सब कार्रवाई देखकर 'शिवकुमार' से न रहा गया अत एव वह बोला कि हे श्रेष्ठिपुत्र! यह विनय तो साधुमहात्माओंकोही योग्य है तुमने जो यह विनय मेरे प्रति किया है यह सर्वथा अनुचित है यदि तुमसे जान कारभी ऐसा अनुचित कार्य करेंगे तो अन्यजनोंका तो कहनाही क्या? यह सुनकर 'दृढधर्मा' बोला कोई भी सम्यग्दृष्टिजीव समभावमें वर्तता हो वह सर्व विनयके योग्य होता है,

यथा—यस्य कस्यापि हि स्वान्तं समभावाधिवासितम्।
स वन्दनार्हो भवति दोषाशंकापि नेह भोः ॥ १ ॥

यह कहकर 'दृढधर्मा' बोला हे कुमार! आपने भोजनका त्याग क्यों किया? मैं यही पूछनेके लिए आया हूँ। 'शिवकु-

मार' बोला भाई मेरी उत्कंठा दीक्षा ग्रहण करनेकी है और मातापिता आज्ञा नहीं देते । इस लिए मैं संसारके सर्वकार्योंसे मुक्त हो भाव यति होकर यहां बैठा हूँ और इसीलिए भोजनका त्याग किया है कि मातापिता किसी तरह आज्ञा दें तो इस दुःखमय संसारके जालमेंसे निकलूँ ।

'शिवकुमार' के वचन सुनकर श्रेष्ठिपुत्र 'दृढधर्मा' बोला यदि आपकी ऐसीही इच्छा है तो भोजनका त्याग मत करो क्योंकि अन्नके विना शरीर नहीं रहसकता और शरीरके विना धर्म नहीं होसकता, और इस बातको आप भी जानते हैं कि हमेशा धर्ममेंही तत्पर रहनेवाले महर्षिलोगभी शरीरकी रक्षाके लिए निर्दोष आहार पानी ग्रहण करते हैं, निराहार शरीर होनेसे कर्मकी निर्जराभी दुष्कर होती है अत एव आप आहारपानी ग्रहण करो पश्चात् जो भावी है सो होगा । यह सुन 'शिवकुमार' बोला कि हे भाई! जो तुम कहते हो सो सत्य है परंतु मेरे निमित्त बनाई हुई वस्तु मुझे नहीं कल्पती क्योंकि मैं सर्वसावद्यका त्याग कर चुका हूँ । इसलिए निर्दोष भोजन न मिलनेसे मुझे आहार न करनाही उचित है । 'दृढधर्मा' बोला आजसे आप मेरे गुरु और मैं आपका शिष्य हूँ, आपको जिस जिस वस्तुकी जरुरत होगी वह सबही मैं निर्दोष लाकर दूँगा । 'शिवकुमार' बोला यदि ऐसा है तो छठ छठके पारणे निरंतर आँबिलसे करूँगा ।

इस प्रकार सामाचारीको जाननेवाला श्रेष्ठिपुत्र 'दृढधर्मा' 'शिवकुमार' को समझाकर उसका विनय करने लगा और जिस वस्तुकी भाव यति शिवकुमारको जरुरत होती है वह निर्वद्य लादेता है । इस प्रकार शिवकी आकांक्षावाले 'शिवकुमार' को दुस्तप

तपस्या करते हुवे बारह वर्ष व्यतीत हो गये परंतु मोहके वश होकर उसके मातापिताने उसे गुरुमहाराजके पास जानेकी आज्ञा न दी। आयुके पूर्ण होनेपर महातपस्वी 'शिवकुमार' काल करके ब्रह्मलोक नामा देवलोकमें महान् द्युतिवाला 'विद्युन्माली' नामा देव यह इन्द्रके समान ऋद्धिवाला हुआ है। और इस पुण्यात्माकी अभी तकभी पूर्वोक्त कारणसे वह कान्तिक्षीण नहीं हुई। आजसे सातवें दिन इस देवका जीव इसी नगरमें 'ऋषभदत्त' श्रेष्ठिके घर अन्तिम केवली जंबुनामा पुत्रपने उत्पन्न होगा। भगवान महावीरस्वामीके ऐसा कहनेपर 'विद्युन्माली' देव समवसरणसे उठकर गगनमार्गसे देवलोकमें चला गया। 'विद्युन्माली देव' के चले जानेपर उसकी चार देवियां जो प्रथमसे समवसरणमें बैठीथीं उन्होंने हाथ जोड़कर भगवानसे पूछा कि हे भगवन्! हमारे पति इस 'विद्युन्माली' देवका हमें कभी कहीं फिरभी समागम होगा या नहीं?

यह सुनकर भगवान बोले इसी नगरमें 'समुद्र,' प्रियसमुद्र,' 'कुबेर' और 'सागर' ये चार श्रेष्ठी रहते हैं उन चारोंके घर तुम पुत्रीपने जन्म लोगी, वहां तुमारा इस लघुकर्मीके साथ समागम होगा, यों कहकर सुरासुरोंसे सेवित हैं चरणारविन्द जिनके और भव्यारविन्दोंको प्रमुदित करनेमें सूर्यके समान कृपासमुद्र भगवान श्री महावीरस्वामी अन्यत्र विहार कर गये।

॥ चौथा परिच्छेद ॥

अन्तिम केवली जंबूस्वामी.

इधर राजगृह नगरमें राजशिरोमणि ‘श्रेणिक’ राजा सम्यक् प्रकारसे अपनी साम्राज्य लक्ष्मीको पालता है। राजगृह नगरमें राजसभाका भूषण और धर्मकर्ममें श्रेष्ठ ‘ऋषभदत्त’ नामा श्रेष्ठी रहता है, वह ऐसा तो धर्ममें चुस्त है कि अठारह दोषसे रहित देवको देव मानता है पाँच महाव्रतधारी साधुको गुरु मानता है और सर्वज्ञ प्रणित धर्मको धर्म मानता है। गुरुओंके पास जाकर हमेशा धर्मशास्त्र श्रवण करता था अत एव उसका हृदयरूप जल ऐसा तो निर्मल था कि जिसमें मिथ्यात्वरूप मलका लेशभी न था, जैसे सरोवरका जल तथा मार्गके वृक्षोंके फल सर्व जनोंके उपभोगमें आते हैं वैसेही उस ‘ऋषभदत्त’ श्रेष्ठीकी लक्ष्मीभी सर्वजनोंको उपकारकारिणी होतीथी। हंसके समान है गति जिसकी और धर्मको धारण करने वाली ‘धारिणी’ नामकी उसकी धर्मपत्नी थी ‘धारिणी’ हमेशा सर्व गुणोंमें शिरोमणि शीलव्रतको अपने प्राणोंसेभी अधिक पालती थी क्योंकि सीतासी सतियोंनेभी बढ़े बड़े संकटोंमें इस दुष्कर शीलव्रतकीही रक्षा

की है और इसी कारण इस विनश्वर संसारमें हमेशाके लिए उनका नाम अमर हो गया है, 'धारिणी' शीलविनयादि अत्यंत निर्मल गुणोंसे अपने पतिके हृदयमें ऐसी वसती थी जैसे समुद्रके हृदयमें गंगा वसती है, अर्थात् उन दोनोंका परस्पर ऐसा अखंडित प्रेम था कि जैसे दूध और पानी, वे शरीरसेही भिन्न मालूम पड़तेथे परंतु दोनोंकी चित्तवृत्ति एकही थी मगर कसर इतनीही थी कि उन दोनोंके कोई संतान न थी। इसतरह अनेक प्रकारके सुखोंका अनुभव करते हुवे समय व्यतीत करते थे। एक दिन 'धारिणी' अपने मनही मन विचार करने लगी कि पूर्वकृत सुकृतके प्रभावसे हमें यहांपर संसारसंबंधि सबही सुख मिले परंतु एक पुत्रके विना ये सबही सुख व्यर्थ हैं, धन्य है उन स्त्रियोंको जो अपनी गोदमें अपने पुत्ररत्नको धारण करती हैं और उनकाही जन्म सफल है, मुझ हतभागिनीका तो जन्म 'अवकेशी'[1] वृक्षके समान दुनियामें निष्फलही है क्योंकि—

गृहवासोहि पापाय तत्रापि सुतवर्जितः ।
तदेतत्खल्वलवणकुभोजननिभं मम ॥ १ ॥

'धारिणी' जब यह चिन्ता कर रहीथी तब वहांपर 'ऋषभदत्त श्रेष्ठी' आ पहुँचा और उसकी आकृति मलीन देखकर बोला कि हे प्रिये! आज तुमारा मन चिन्तामें मग्न क्यों है? 'धारिणी' ने अपने पतिसे दुःखका कारण कह सुनाया, यद्यपि दुखी आदमीका दुःख सुननेसे उसे कुछ शांति होती है परंतु पुत्र चिता जन्य दुःख अपने पतिसे कहनेपरभी 'धारिणी' का दुःख कम न हुआ बल्कि उस दुःखका यहां तक असर हुआ कि 'धारिणी'

---

१ वन्ध्यवृक्ष.

उसी चितासे प्रतिदिन द्वितीयाके चंद्रमाकी कलाके समान कृशताको धारण करने लगी, एक दिन संतानकी चिन्तारूप दुःखको भुलाने के लिए 'ऋषभदत्त' मधुर वचनोंसे अपनी पत्नीसे बोला कि प्रिये! आज नन्दन वनकी उपमाको धारण करनेवाले वैभारगिरि पर्वतपर चलें और वहां जा कर स्वेच्छापूर्वक क्रीड़ा करें। 'धारिणी' ने पतिकी आज्ञा विनयपूर्वक स्वीकार की 'ऋषभदत्त' नेभी शीघ्रही वैभारगिरि पर्वतपर जानेके लिए रथ तैयार कराया, रथके अन्दर हंसोंकी रोमके बने हुवे दो बिछौने बिछवाये और अपनी प्रियाके साथ रथमें बैठ कर वैभारगिरि पर्वतकी ओर चल पड़ा। रस्तेमें अनेक प्रकारके जो दृश्य आते हैं 'ऋषभदत्त' अपनी प्रियाको विनोदके लिए सब हाथसे बताता जाता है। हे प्रिये! ये सब मार्गमें चलनेवाले मुसाफ़िरोंको छायाद्वारा आनन्द देनेवाले वृक्ष हैं यह राजाके घोड़ोंके फिरनेकी जमीन है जहांपर प्रतिदिन घोड़े फिराये जाते हैं और इसी लिए घोड़ोंके मुखसे गिरे हुवे झागोंसे यह भूमि सुफ़ेद होरही है। देख इधर सहकारोंके वृक्षोंपर कोयल क्या मधुर स्वरसे बोल रही है और ये सामने अपने रथसे डरकर हरिण भाग रहे हैं। इस उद्यान वनकी कैसी अद्भुत शोभा देख पड़ती है?

इस प्रकार अपनी प्रियाके साथ विनोद करता हुआ 'ऋषभदत्त' वैभारगिरि नामा पर्वतपर पहुँचा, उस समय पर्वतकी शोभा अतीव रमणीय देख पड़तीथी। कहीं तो लहलहाये वृक्षोंपर तोतोंकी पंक्तियां बैठी हैं कहीं आम्रके वृक्षोंपर सहृदयजनोंके चित्तको हरन करनेवाली कोकिलायें मधुर स्वरकी ध्वनि कर रही हैं। कहीं वानरियें अपने बच्चोंको छातीसे लगाकर वृक्षोंपर चढ़ रही हैं कहीं पर्वतसे पानीके फुवारे झर रहे हैं और कहीं

अनारकी कलियें खिली हुई हैं, कहीं चंपाचंबेलीके पुष्प लहलहा रहे हैं, शरीरको आनन्द देनेवाला कहीं शीतल वायु चलता है, कहीं अनेक प्रकारके पुष्पोंकी सुगंधमहक रही है । इस प्रकार आनन्दमय दृश्यको देखते हुए वे दोनों वैभारगिरि पर्वतपर फिर रहेथे, इतनेमेंही 'ऋषभदत्त' ने देवकुमारके समान रूपवाले 'यशोमित्र' नामा एक सिद्धपुत्रको देखा और उसके साथ वार्तालापभी किया, 'ऋषभदत्त' 'यशोमित्र' सिद्धपुत्रको अपना स्वधर्मी जान कर बोला कि हे भाई! आप कहां जाना चाहते हैं? 'यशोमित्र' सिद्धपुत्र बोला कि भाई आपको मालूम नहीं? इस उद्यानमें परम पवित्र श्री महावीरस्वामीके शिष्य गणधरभगवान श्री 'सुधर्मा' स्वामी समवसेर हैं, मैं उन्हें वन्दन करनेके लिए जा रहा हूँ, यदि आपकी इच्छा है तो आपभी जलदी चलो और उन महात्माओंको वन्दन करके अपनी आत्माको निर्मल करो । यह सुनकर आनन्दित हुआ हुआ 'ऋषभदत्त' अपनी प्रियाको साथ लेकर सिद्धपुत्रके साथ चल पड़ा । थोड़ीही देरमें गणधर भगवान श्री 'सुधर्मा' स्वामीके चरणारविन्दोंसे पवित्र स्थानपर जापहुँचे । भगवान 'सुधर्मा' स्वामीको भक्तिपूर्वक द्वादशावर्त वन्दनसे नमस्कार करके योग्य स्थानपर बैठ गये और सुधाके समान श्री गणधर भगवानकी धर्मदेशना सुनी । धर्मदेशना होते समय कुछ अवसर पाके 'यशोमित्र' सिद्धपुत्रने श्री 'सुधर्मा' स्वामीसे पूछा कि भगवन्! जिसके नामसे यह जंबूद्वीप प्रसिद्ध है वह जंबू किस प्रकारकी है? श्रुतकेवली भगवान 'सुधर्मा' स्वामीने जातिमान रत्नमय उस जंबू वृक्षका स्वरूप प्रमाण और उसका प्रभाव कह सुनाया । तत्पश्चात् 'धारिणी' ने भी अवसर पाके गणधर भगवानसे यह प्रश्न किया कि हे भगवन्! मुझ

अभागिनीको पुत्ररत्नकी प्राप्ति होगी या नहीं? इतनेमेंही 'सिद्ध-पुत्र यशोमित्र' बोल उठा कि हे भद्रे! इस प्रकारके सावद्य प्रश्नको ऋषियोंसे पूछना योग्य नहीं क्योंकि महात्मा पुरुष सावद्य वस्तुको जानते हुवे भी नहीं कथन करते, इसलिए हे कल्याणि! गुरुमहाराजकी कृपासे यह बात तुझे मैंही बताऊँगा। इधर धर्म-देशना समाप्त होनेपर धीरस्वभाववाले गणधरभगवान श्री सुधर्मा-स्वामी तत्रस्थ एक शिलाके ऊपर बैठ गये और सिद्धपुत्र 'यशोमित्र' धारिणीसे कहने लगा कि हे भद्रे! पुत्रोत्पत्तिके लिए जो तूने पूछा है उसका यह समाधान है कि जब तू रात्रिके समय स्वप्नमें अपनी गोदमें सिंहको बैठा हुआ देखेगी तब निश्चय समझ लेना कि तू अपनी कुक्षीमें पुत्ररूपसिंहको धारण करेगी और गणधरभगवानने जिस प्रकारके जंबूवृक्षके गुण वरनन करे हैं वैसेही गुणोंको धारण करनेवाला और देवोंसे सानिध्य करानेवाला नव मास पूर्ण होनेपर जंबू नामा पुत्ररत्न उत्पन्न होगा। यह सुन मनमें आनन्दित होकर 'धारिणी' बोली हे सिद्धपुत्र! यदि ऐसा है तो जंबूद्वीपके अधिष्ठाता देवताको उद्दिश्यके मैं एकसौ आठ आयंबिल करूँगी। इसतरहकी प्रतिज्ञा करके 'धारिणी' गुरुमहाराजको भक्तिपूर्वक नमस्कार करके अपने पतिके साथ राजगृह नगरमें आगई और सिद्धपुत्रभी वन्दन करके अपने स्थानपर चला गया। उस दिनसे 'धारिणी' सिद्धपुत्रके वचन-पर विश्वास रखकर आनन्दसे अपने समयको व्यतीत करती है, एक दिन रात्रिके समय सुखशय्यामें सोती हुई 'धारिणी' ने स्वप्नमें श्वेत वरणवाले सिंहको अपनी गोदमें बैठा देखा और तत्कालही निद्रा खुल जानेसे 'धारिणी' ने अपने पतिके पास जाकर सब वृत्तान्त सुना दिया। 'ऋषभदत्त' बोला प्रिये!

सिद्धपुत्रका वचन निस्संदेह सत्य है यह स्वप्नही निश्चय कराता है कि अब हमारी आशा लता पल्लवित होगी और हे कल्याणि! इस स्वप्नके प्रभावसे तू सर्व लक्षणोंसे संपूर्ण और पवित्र चरित्र-वाले पुत्ररत्नको जन्म देगी। 'ऋषभदत्त' के इस प्रकार वचन सुनकर 'धारिणी' खुशी होकर अपने पतिके कथनको विनय-पूर्वक स्वीकार करके अपने शैनगृहमें (शय्यागरमें) चली गई। वहां जाकर जिनेश्वरदेवकी स्तवना करने लगी और जागृतिसे रात्रिको व्यतीत करती है। इधर ब्रह्म देवलोकसे 'विद्युन्माली' के जीवने देवसंबंधि आयुको पूर्ण करके जैसे छीपके अन्दर मोति उत्पन्न होता है वैसेही 'धारिणी' की कुक्षीमें स्थान प्राप्त किया। एक दिन 'धारिणी' का बड़े आडंबरसे देवपूजा करनेका दोहला उत्पन्न हुआ, प्राय स्त्रियोंको गर्भानुसारही दोहले हुआ करते हैं जैसा जीव गर्भमें आता है उस जीवके कर्तव्य तथा पुन्यानुसार जो उस समय स्त्रीको इच्छा होती है उसकोही दोहला कहते हैं। 'ऋषभदत्त' श्रेष्ठिने बहुतसा धनव्यय करके 'धारिणी' का दोहला सानन्द पूर्ण किया, अब 'धारिणी' बड़े प्रयत्नसे अपने गर्भकी रक्षा करती हुई समय व्यतीत करती है। गर्भके बढ़नेसे 'धारिणी' के कपोल स्थल (गाल) प्रातःकालके चंद्रमाकी उप-माको धारण करने लगे। इस प्रकार नव मास पूर्ण होनेपर जैसे पूर्व दिशा जनानन्दी सूर्यको जन्म देती है वैसेही 'धारिणी' ने पुत्ररत्नको जन्म दिया।

अब 'ऋषभदत्त' के घर चारों तर्फसे मोतियों तथा अक्ष-तोंसे भरे हुवे सुवर्ण और चाँदीके थाल आने लगे। कोई मंग-लके निमित्त दुर्वा (दूब) लाता है कोई आकर वधाई देता है और कितनीएक स्त्रियां उसके घरके आँगनमें आकर नृत्य करती

हैं तथा धवल मंगल गाती हैं और कोई स्त्री आकर उसके घरके दरवाजेपर कुंकुमके थापे लगाती है। 'ऋषभदत्त' नेभी उसवक्त कल्याणके सूचक बाजे बजवाये और अर्थिजनोंको मुँह माँगा दान देकर बड़े आडंबरसे जिनेश्वर देवकी पूजा रची। जिस समय अपनी पत्नी सहित 'ऋषभदत्त' गणधरभगवानको वन्दन करनेको गयाथा उस वक्त सिद्धपुत्रके पूछनेसे जंबूवृक्षका वरनन करते हुवे गणधरभगवानसे 'धारिणी' ने पुत्रोत्पत्तिका प्रश्न किया था। अत एव 'ऋषभदत्त' श्रेष्ठिने पुत्रका नाम जंबूकुमार रक्खा। अब प्रतिदिन द्वितीयाके चंद्रमाके समान 'जंबूकुमार' वृद्धिको प्राप्त होने लगा। 'जंबूकुमार' का ऐसा तो अद्भुत रूप था कि उसके मातापिता उसको देखकर खुशीके मारे अन्य कार्योंको भी भूल जाते थे। 'जंबूकुमार' अपने मातापिताकी आशालताके लिए वृक्षके समान क्रमसे योवन अवस्थाको प्राप्त हुआ।

॥ पांचवाँ परिच्छेद ॥

जंबू कुमारका विवाहोत्सव
— और —
आजन्म ब्रह्मचर्यका नियम.

इधर उसी नगरमें धनसे धनदके समान ऋद्धिवाले आठ साहूकार रहतेथे, उन्होंके नाम ये थे पहलेका 'समुद्रप्रिय' और उसकी पत्नीका नाम 'पद्मावती' था दूसरेका नाम 'समुद्रदत्त' था 'कनकमाला' नामकी उसकी पत्नी थी तीसरेका नाम 'सागरदत्त' था और पतिका विनय करनेमें तत्पर विनयश्री नामकी उसकी प्रिया थी चौथेका नाम कुबेरदत्त था वह ऋद्धिसेभी कुबेरके सदृशही था और शीलालंकारको धारण करनेवाली 'धनश्री' नामकी उसकी भार्या थी। इन चार साहूकारोंके घर क्रमसे 'विद्युन्माली' की चारों देवियोंने पुत्रीपने जन्म लिया, उनका नाम (१ समुद्रश्री,) (२ पद्मश्री,) (३ पद्मसेना,) तथा (४ कनकसेना) था बाकीके चार साहूकारोंका नाम–'कुबेरसेन' उसकी पत्नीका नाम 'कनकवती' था दूसरा 'श्रमणदत्त' था उसकी भार्या 'श्रीषेणा' थी तीसरा 'वसुषेण' था उसकी पत्नी 'वीरमती' थी और चौथा 'वसुपालित' था 'जयसेना' नामकी उसकी प्रिया थी। इन चारोंकेभी चार कन्यायें थीं उन कन्याओंके

नाम १ 'नभःसेना' २ 'कनकश्री' ३ 'कनकवती' तथा ४ 'जयश्री' था। जब इन साहूकारोंकी ये कन्यायें योवन अवस्थाको प्राप्त हुईं तब उन लड़कियोंके विवाहके लिए वरकी तालाइस कराई, परन्तु 'जंबूकुमार' के सदृशरूपलावण्यसंपन्नगुणवान अन्य वर देखनेमें न आया। इस लिए उन आठोंही साहूकारोंने मिलकर 'जंबूकुमार' के पिताके पास जाकर बड़ी नम्रतासे यह प्रार्थना की कि हे श्रेष्ठिन्! रूपलावण्यको धारण करनेमें अप्सराओंके समान हमारे आठ कन्यायें हैं वे अब पानीग्रहण करनेके योग्य हुई हैं परन्तु उन आठोंही कन्याओंके योग्यरूप लावण्य गुणसंपन्न वर तुमारे पुत्रके सिवाय अन्य वर नहीं देख पड़ता, क्योंकि दुनियांमें कुल, शील, रूप, वय, ऐश्वर्यादि गुणोंसे संपन्न वर बड़े पुन्यके प्रभावसे मिलता है। तुमारा पुत्र सर्वगुणसंपन्न है अत एव हम आपसे याचना करते हैं कि आपके पसायसे यह 'जंबूकुमार' हमारी कन्याओंका वर हो और हम आशा रखते हैं कि आप बड़े सुकुलीन और दक्ष हैं इस लिए विवाह संबंध करके आप हमें सर्वथा अनुग्रहित करेंगे। 'ऋषभदत्त' स्वयं अपने पुत्रके लिए योग्य कन्याओंकी तालाइसमें था अत एव 'ऋषभदत्त' ने उन साहूकारोंकी प्रार्थना सहर्ष स्वीकार कर ली। इधर उन कन्याओंको भी मालूम हुआ कि हमारे पिताओंने हमें 'जंबूकुमार' के प्रति दे दिया है अत एव बड़ी खुशी होकर अपनी आत्माको धन्य मानने लगीं। इधर उन जीवोंके पुन्य योगसे राजगृह नगरके बाह्योद्यानमें गणधरभगवान श्री 'सुधर्मा' स्वामी आकर समवसरे। भगवान 'सुधर्मा' स्वामीका आगमन सुनकर अल्पकर्मी 'जंबूकुमार' मारे हर्षके फनसके फलके समान रोमांचित होगया और गणधरभगवानको वन्दन करनेके लिए

शीघ्रही रथ तैयार कराया। जिस उद्यानको गणधरभगवान अपने चरणारविंदोंसे पवित्र करतेथे उस उद्यानमें जाकर 'जंबूकुमार' ने सानन्द भक्तिपूर्वक श्री 'सुधर्मा' स्वामीको नमस्कार किया और योग्य स्थानपर बैठके उनके मुखारविंदसे सुधाके समान उनकी धर्मदेशना सुनी।

गणधरभगवानकी देशना सुनकर 'जंबूकुमार' को एसा वैराग्य हो गया कि वह संसारको तृण समान समझने लगा। देशना समाप्त होनेपर 'जंबूकुमार' हाथ जोड़कर भगवान सुधर्मा स्वामीके सामने इस प्रकार विज्ञप्ति करने लगा कि हे भगवन्! आपकी देशना सुनकर मेरे हृदयरूप मंदिरमें विवेकरूप दीपक प्रगट हो गया है और उससे मैंने संसारकी असारता पैछान ली है अत एव इस दुःखमय असार संसारमें रहनेकी मेरी इच्छा नहीं है अब मैं भ्रमरके समान आपके चरणकमलोंकी सेवा करूँगा। मैं अपने मातापितासे आज्ञा ले आऊँ आप कृपा कर जबतक यहांही विराजें। गणधरभगवानश्री 'सुधर्मा' स्वामीने यह बात मंजूर करली क्योंकि सन्त पुरुष परप्रार्थनाका भंग नहीं करते। अब जंबूकुमार गुरुमहाराजको वन्दन करके मातापिताकी आज्ञा लेनेके लिए रथमें बैठकर घरको चल पड़ा, 'जंबूकुमार' शहरके दरवाजेपर आकर देखता है तो वहांपर इतनी भीड़ देख पड़ी कि दरवाजेके अन्दरसे एक आदमीभी न निकल सकता था इस लिए 'जंबूकुमार' ने विचार किया कि मैं गुरुमहाराजको ठहराकर आया हूँ और यहां मुझे देरी लगनेका संभव है अत एव इस दरवाजेको छोड़कर दूसरे दरवाजेसे नगरमें जाना योग्य है। 'जंबूकुमार' ने यह विचार कर शीघ्रही नगरके दूसरे दरवाजेकी ओर रथको फिरवाया। परन्तु दैव योगसे वहांपरभी जाकर देखता है तो

दरवाजेपर तोपें लगाई हुई हैं लड़ाईका सामान तैयार होरहा है और दरवाजेसे एक बड़ी भारी पाषाणकी शिला गिरनेको होरही है । यह विचित्र घटना देखकर 'जंबूकुमार' ने जान लिया कि आज किसी शत्रुके आक्रमणका भय है परन्तु इस हालतमें यदि मैं इस दरवाजेसे प्रवेश करूँ? तो कदाचित् दैवयोगसे ऊपरसे शिला पड़े तो ना तो मेराही पता लगे न रथवानका और न रथका और यदि इस प्रकार अविरतिपनेमें मृत्यु होगई तो दुर्गतिके सिवाय कोई ठिकाना नहीं, क्योंकि कुमृत्युसे मरे हुवे प्राणियोंको प्राय सुगति गगनारविंदके समान होती है इस लिए मैं पीछे जाके गुरुमहाराजके पास कुछ व्रत अंगीकार करूँ पीछे जो होना होगा सो हो रहेगा । यह विचार करके 'जंबूकुमार' पीछे गुरुमहाराजके पास आया और गुरुमहाराजको भक्तिपूर्वक वन्दन कर दोनों हाथ जोड़के बोला कि हे भगवन्! आप कृपा करके मुझे आजन्म ब्रह्मचर्यका नियम करा दो । यह सुनकर गुरुमहाराजने 'जंबूकुमार' को आजन्म ब्रह्मचर्यका नियम करा दिया । 'जंबूकुमार' मन, वचन, कायाकी शुद्धिसे ब्रह्मचर्यका प्रत्याख्यान (पच्चक्खान) करके हर्षपूर्वक अपने मकानपर आया और अपने मातापितासे यों बोला कि हे तात! आज मैंने कर्मरोगको क्षय करनेमें संजीवन औषधीके समान श्री सर्वज्ञोपज्ञ धर्मको श्री गणधरभगवानके मुखारविन्दसे सुना है अत एव अब मुझे यह संसार कारागारके समान देख पड़ता है । इस दुःखमय असार संसारमें रहनेकी मेरी इच्छा नहीं । इस लिए आप मुझपर अनुग्रह करके दीक्षा लेनेकी आज्ञा दें, 'जंबूकुमार' के इस वचनको सुनकर उसके मातापिताओंके नेत्रोंमेंसे अश्रुधारा बहने लगी और गद्गद स्वरसे बोले कि हे पुत्र! हमारी आशालताको

उन्मूलन करनेमें प्रचंड वायुके समान ऐसे वचन मत बोल। हम तो यह विचार करते हैं कि तू बहुओंवाला होकर अपने पुत्ररूप रत्नको हमारी गोदमें बैठाकर हमारे मनोरथको पूर्ण करेगा और हे पुत्र! यह समय तेरा दीक्षा लेनेका नहीं है परन्तु युवावस्थाके योग्य विषयजन्य सुख भोगनेका है। इस लिए तू इस सुखकी इच्छा क्यों नहीं करता ?। 'जंबूकुमार' अपने ब्रह्मचर्य व्रतको प्रगट न करके बोला कि हे तात! संसारमें विषयजन्य सुख मुझे विषके समान माल्हम होता है। संसारमें ऐसा कौन मूर्ख मनुष्य है कि जो जान बूझकर जहर खावे ? जिस प्रकार कैदी आदमीको जेलखाना दुःखजनक माल्हम होता है वैसेही मुझे यह संसार माल्हम होता है इसलिए आप मेरे ऊपर दया करके इस संसाररूप जेलखानेसे निकलनेकी आज्ञा दो। इस प्रकार 'जंबूकुमार' का अत्यंत आग्रह जानकर उसके मातापिता बोले कि हे वत्स! यदि दीक्षा लेनेमें तेरा अत्यंतही आग्रह है तो हम तेरे मातापिता हैं हमारा इतना तो कहना मान ले कि जो हमने तेरे लिए आठ कन्यायें माँगी हुई हैं उनके साथ पानी ग्रहण करके हमारे मनोरथको पूर्ण कर दे और पश्चात् खुशीसे दीक्षा ग्रहण करनी बल्कि तेरे साथ हमभी इस असार संसारको त्यागकर दीक्षा लेंगे।

यह सुनकर 'जंबूकुमार' बोला हे तात! यदि आपकी आज्ञासे मैं यह कार्य करूँ तो पीछे भोजनसे भूखे आदमीके समान मुझे दीक्षा लेनेसे न रोकना। मातापिताने यह बात स्वीकार करली और जो कन्यायें 'जंबूकुमार' के लिए माँगी हुईथीं उनके पिताओंसे जाकर यों बोले कि देखो भाई! हमारा पुत्र विवाह करातेही संसारको छोड़कर दीक्षा लेलेगा और वह

केवल हमारे उपरोधसेही विवाह कराना मंजूर करता है वरना उसकी इच्छा बिलकुल नहीं है, आप लोगोंको पीछेसे पश्चात्ताप न हो इस लिए हम पहलेही सूचना करते हैं, अब यदि आप हमारे पुत्रके साथ अपनी कन्याओंका विवाह करना उचित समझो तो सोच विचारके करो। यह सुनकर कन्याओंके मातापिता सकुटुम्ब विचारमें पड़ गये परन्तु उन्हें कुछभी रस्ता न सूझा। यह बात धीरे धीरे उन कन्याओंके कानोंमें पहुँची कि हमारे मातापिता इस बातके विचारमें पड़े हैं। इस लिए उन कन्याओंने मिलकर यह विचार किया कि जो बिंध गया सो मोति और रह गया सो पत्थर। यह विचार कर अपने पिताओंके पास जाकर बोलीं कि हे तात! आप लोगोंका विचार करना व्यर्थ है क्योंकि हमें जिसके प्रति आप प्रथम देचुके हो हमारे लिए तो वही हमारा पति है। हम अन्य वरको कभी भी मन, वचन, कायासे न इच्छेंगी और लोकमें भी यह कहा जाता है कि—

सकृज्जल्पन्ति राजानः सकृज्जल्पन्ति साधवः।
सकृत्कन्याः प्रदीयन्ते त्रीण्येतानि सकृत् सकृत्॥

इस लिए 'ऋषभदत्त' श्रेष्ठिका पुत्रही हमारी गति मति है और उसकेही अधीन हमारा जीवन है, यदि वह दीक्षा लेवेंगे तो हम भी दीक्षा लवेंगी उनके सुखमें हमारा सुख है और उनके दुःखमें हमारा दुःख है, जो वे करेंगे सोही हम करेंगी परन्तु 'जंबूकुमार' के सिवाय हमें अन्य वर सर्वथा मंजूर नहीं। पतिव्रता स्त्रियोंको उचित भी यही है कि अपने पतिके दुःखमें दुःख मानें और सुखमें सुख, क्योंकि उनको पतिके सिवाय संसारमें और

---

१ आग्रह.

किसीका भी आधार नहीं, जो स्त्री मन, वचन, कायासे परपुरुषका त्याग करके सच्चे दिलसे अपने पतिकी सेवा करती है वही सीता सतीके समान पतिव्रता स्त्रीकी रेखाको प्राप्त करती है। कन्याओंका दृढ़ निश्चय समझकर उनके पिताओंने 'ऋषभदत्त' श्रेष्ठिसे कह दिया कि तुम विवाहकी तैयारी कराओ हमें प्रथमकाही वचन प्रमाण है, यह कहकर कन्याओंके पिताओंने मिलकर एक 'निमित्तज्ञ' को बुलवाया और उससे कहा कि ऐसा मुहूर्त निकालो जो थोड़ेही दिनमें आता हो। कुछ सोच विचार करके 'नैमित्तिक' बोला भाई! आजसे सातवें दिन लगनके लिए मुहूर्त ठीक आता है इससे नजीक और मालूम नहीं पड़ता। यह सुनकर कन्याओंके पिताओंने तथा 'ऋषभदत्त' ने बड़ी खुशीसे इस मुहूर्तको मंजूर कर लिया। 'समुद्रप्रिय' आदि आठोंही साहूकारोंने परस्पर मिलकर एक बड़ा भारी मंडप रचाया, उस मंडपकी रमणीयता दर्शक जनोंके चित्तको हरण करती थी मंडपके चारों ओर सच्चे मोतियोंके तोरण बँधे हुवे थे उन तोरणोंपर चाँदनी रातमें चंद्रमाकी किरणें पड़तीथीं उसवक्त यह मालूम होता था कि भावी चरम केवली 'जंबूकुमार' की भक्तिसे इस मंडपकी शोभा बढ़ानेके लिएही चन्द्रमाने मानो अपनी समस्त किरणोंको यहांपर स्थापन किया है। इधर 'जंबूकुमार' के मातापिताओंने अच्छा मुहूर्त देखकर विधिपूर्वक 'जंबूकुमार' को बटना मलना शुरु किया 'जंबूकुमार' बटनेसे पीतवरणवाला हुआ हुआ तपे हुवे सुवर्णके समान कान्तिको धारण करने लगा। उधर कन्याओंकी भी असूर्यंपश्या राजपत्नियोंके समान हिफ़ाजत होने लगी। आठोंही कन्यायें रूपलावण्यसे अप्सराओंके समान थीं अत एव उनके मनमें कुछ यह भी घमंड था कि अच्छे रूपलावण्य तथा

सद्‌गुणोंवाली एकही स्त्री पुरुषको वश कर लेती है तो फिर हम आठोंसे 'जंबूकुमार' कैसे चपरके जासकता है? जिस वक्त उसके सामने हमारे कठाक्षोंकी दृष्टि होगी उस वक्त स्वयमेवही उसका दिल वर्षामें कर्कष भूमिके समान पिंगल जायगा। इस प्रकारके विचार करके अपने मनमें बड़ी खुशी होतीथीं परन्तु उन्हें यह खबर न थी कि जगज्जयी कामदेवको जीतनेके लिए यह एकही अद्वितीय वीर जन्मा है। विवाह मंडपमें लेजानेके लिए 'जंबूकुमार' को आभूषण वगैरह पहराने लगे, कोई गलेमें कंठा डालता है, कोई कानोंमें कुंडल और कोई सच्चे मोतियोंका हार उसके गलेमें पहनाते हैं, कोई स्त्री आकर वरराजाके केश सुधारती है और कोई स्त्री आकर चन्दनका विलेपन कर जाती है, अनेक स्त्रियां इस प्रकार 'वरराजा' की शोभा बढ़ा रही हैं। 'जंबूकुमार' का स्वाभाविकही रूप कामदेवका तिरस्कार करता था आभरण वगैरह पहरनेसे तो क्याही कहना था। 'जंबूकुमार' जिस वक्त विवाहके योग्य जामा पहर रहा था उस वक्त यह मालूम होता था मानो मकरध्वजको जीतनेके लिएही यह बक्तर पहर रहा है। 'जंबूकुमार' को विवाह मंडपमें लेजानेके लिए एक अच्छे सुन्दर घोड़ेपर चढ़ाया गया, एक आदमी 'जंबूकुमार' के सिरपर छत्र करता है पासमें बहुतसी स्त्रियां मंगल गीत गारही हैं। इस प्रकार अद्भुत शोभाको धारण करता हुआ 'जंबूकुमार' अपने सुसरेके घर विवाहमंडपमें जा पहुँचा। 'वरराजा' को आया हुआ देखकर एक सुहागन स्त्रीने शरीर धारी कामदेवके समान 'जंबूकुमार' को दधि आदि मंगल द्रव्योंसे अर्घ दिया तत्पश्चात् दरवाजेमें स्थापित किये हुवे अग्नि गर्भित 'शरावसंपुट' को अपने पाँवसे फोड़ कर 'जंबूकुमार' अति मनोहरताको धारण करनेवाले मातृ-

गृहमें प्रवेश कर गया। वहांपर उन आठोंही कुमारियोंके साथ एक मखमलके आसनपर बैठकर विवाह कौतुकको देखता रहा। फेरे फिरनेका मुहूर्त आनेपर 'जंबूकुमार' को चौरीमें बुलाया गया और विधिपूर्वक फेरे फिरने लगे, इस समय वहांका दृश्य कुछ औरही मालूम पड़ता था कहीं स्त्रियां मंगल गीत गारही हैं कहीं मनोहर बाजोंकी आवाज कानोंमें पड़ती है और कहीं विवाहविधि करानेवाले पण्डितोंके मुखसे मंत्रध्वनि निकल रही है, इस प्रकारके आनन्दको देखकर 'धारिणी' और 'ऋषभदत्त' के हृदयमें असीम हर्ष बढ़ रहाथा परन्तु उस वक्त 'जंबूकुमार' कुछ औरही ध्यानमें मग्न हो रहाथा। इस प्रकार विवाह समाप्त होनेपर 'जंबूकुमार' को 'करमोचन' में सुसरपक्षसे इतना द्रव्य मिला कि सब इकठा करनेपर एक छोटासा पर्वत बन जाय। तत्पश्चात् आठोंही वधुओंके साथ गाजेबाजेसे 'जंबूकुमार' अपने घर आगया। घर आकर सपरिवार जंबूकुमार प्रथम जिनेश्वर देवके मन्दिरमें नमस्कार करनेको गया पश्चात् कुलदेवताओंको नमस्कार किया। 'ऋषभदत्त' और 'धारिणी' ने बड़े आडम्बरसे जंबूद्वीपके अधिष्ठातृ देवका पूजन किया।



॥ छठा परिच्छेद ॥

रातके समय जंबूकुमारका अपनी स्त्रियोंके साथ विवाद
- और -
चोरी निमित्त प्रभवका आना.

सर्वालंकारोंसे विभूषित 'जंबूकुमार' अपनी पत्नियोंके साथ आवास गृहमें प्रवेश कर गया, यद्यपि 'जंबूकुमार' के पास विकारके हेतु उपस्थित हैं तथापि महाशय 'जंबूकुमार' का मन ऐसा निश्चल है कि कदाचित् मेरुपर्वत चले परन्तु उस महात्माका मन लेशभरभी विचलीत न होवे बल्कि सावधान तया विशेष दृढ होता जाता है। इधर इसी भरतक्षेत्रमें विन्ध्याचलके समीप जयपुर नामका एक बड़ा भारी नगर है उस नगरमें 'विन्ध्य' नामा राजा राज्य करता है उस राजाके दो पुत्र हैं जिसमें बड़का नाम 'प्रभव' और छोटेका नाम 'प्रभु' है। एक दिन जयपुराधिपति 'विन्ध्य' राजाने अपने बड़े पुत्र 'प्रभव' के होनेपर भी किसी हेतुसे अपने छोटे पुत्र 'प्रभु' को राज्यपाट दे दिया। यह बनाव देखकर 'प्रभव' के दिलमें क्रोधाग्नि बल उठी मारे अपमानके 'प्रभव' से

नगरमें न रहा गया अत एव वह घरसे निकल पड़ा और कितनेएक आदमियोंको साथ लेकर विन्ध्याद्रिकी विषम गुफाओंमें जाकर एक गाँव वसा कर रहने लगा। साथके आदमियोंसे नगरोंमें डाँके पड़वाता है तथा और भी लूटना, खसोटना, चोरी वगैरह कार्य कराकर अपने जीवनको व्यतीत करता है। एक दिन किसी आदमीने 'प्रभव' से आकर कहा कि 'राजगृह नगर' में 'ऋषभदत्त' श्रेष्ठिके घर 'जंबूकुमार' के विवाहमें आया हुआ इतना धन पड़ा है कि यदि तुमारी सात पीढ़ी तक भी बैठी खावे तो भी नहीं खुट सकता। यह सुनकर 'प्रभव' उसी रातको पांचसौ चोरोंको साथ लेकर राजगृह नगरमें जा पहुँचा। रात्रिका समय है चोरोंके लिए तो कहनाही क्या? धाड़की धाड़को लेकर 'प्रभव' 'ऋषभदत्त' श्रेष्ठिके घर जा पहुँचा जहांपर 'जंबूकुमार' अपनी नवोढ़ा पत्नियोंके साथ बैठा हुआ संसारकी असारताका विचार कर रहाथा। 'प्रभव' के पास दो विद्यायें बड़ीही प्रबल थीं जिसमें एक 'तालोद्घाटनी' और दूसरी 'अवस्वापनी' थी अत एव 'प्रभव' ने अपनी 'अवस्वापनी' विद्याके प्रभावसे तत्रस्थ सर्व जनोंको निद्रा दे दी और निःशंक होकर 'जंबूकुमार' के महलमें जाघुसा, परन्तु उस विद्याका बल 'जंबूकुमार' पर असर न करसका, क्योंकि जिनके पुण्यका सितारा तेज होता है उनका 'इंद्र' भी बाल बाँका नहीं करसकता। 'अवस्वापनी' विद्यासे निद्रा देकर चोरोंने गहने उतारने शुरु किये। घरके अन्दर चोरोंका हुल्लड़का हुल्लड़ फिरने लगा, इस प्रकारकी कार्रवाई देखकर 'जंबूकुमार' निश्चल मनसे बैठा रहा। दुनियांमें चोर तथा सर्प चाहे कैसेभी दुर्बल हों परन्तु इन दोनोंका रात्रिमें नाम सुनकर मनुष्योंकी छाती धड़क जाती है परन्तु इस प्रकारकी कार्रवाई

देखकरभी महा पराक्रमी 'जंबूकुमार' के हृदयमें न तो क्षोभही हुआ और न कोप, बल्कि गम्भीर स्वरसे चोरोंको यों बोला कि भाई! ये सब मेरे ऊपर विश्वास करके सोये हुवे हैं मैं इनका रखवाला जागता हूँ अतः मेरे बैठे हुए तुम किसी वस्तुको हाथ नहीं लगा सकते हो।

उस पुण्यात्मा 'जंबूकुमार' का इस प्रकारका वचन सुनकर सबही चोर पाषाणकी मूर्तिके समान स्तब्ध हो गये, यह अवस्था देखकर 'प्रभव' अपने मनमें बड़ा विस्मित हुआ और विचारने लगा कि स्तंभन करनेकी तो यह विद्या आजही देखी, यदि यह विद्या हमको आजावे तो बहुतही लाभ हो, यह विचार करके 'प्रभव' 'जंबूकुमार' से बोला कि हे महात्मन्! मैं 'विन्ध्य' राजाका पुत्र 'प्रभव' हूँ आप मुझे 'स्तंभनकारिनी' तथा 'मोक्षकारिनी' ये दो विद्या देकर उपकृत करो। मैं आपको इसके बदलेमें 'अवस्वापनी' तथा 'तालोद्घाटनी' ये दो विद्या देता हूँ, आप मुझे अपना मित्र समझ कर अवश्य ये विद्या दीजिये; यह सुनकर 'जंबूकुमार' बोला कि हे सखे! प्रातःकाल यह सब ऋद्धि छोड़कर तथा इन आठों स्त्रियोंको भी त्याग कर मुझे दीक्षा लेनी है और इस वक्त भी मैं भाव यतिके समान हूँ अत एव हे सखे! संसारको त्यागनेवाले तथा अपने शरीरपर भी निस्पृहरहनेवाले मुझको तुमारी विद्याओंसे क्या प्रयोजन? यह सुन कर 'प्रभव' ने अपनी 'अवस्वापनी' विद्याको संहरण कर तथा 'जंबूकुमार' को नमस्कार कर हाथ जोड़कर कहा कि हे महात्मन्! हम लोग तो इन वस्तुओंके लिए अपने प्राणोंको भी हथेलीपर लेकर फिरते हैं परन्तु तुम तो स्वाभाविक प्राप्त हुई लक्ष्मी तथा रतिके समान रूपवाली इन नवोढा स्त्रियोंको त्याग

कर दीक्षा लेनी चाहते हो सो क्या कारण? इन बेचारी नवोढ़ा स्त्रियोंपर अनुकंपा करके विषयसुखका अनुभव करो संसारके सुखभोगकर पीछे दीक्षा लो तो क्या तुम्हें कोई रोक सकता है?। इस प्रकारके सुखको छोड़कर तुम दीक्षा ग्रहण करनी चाहते हो यह कोई तुमारी बुद्धिमत्ता नहीं क्योंकि इस विषयजन्य सुखके लिए तो संसारमें प्राणी मात्र भटकते फिरते हैं और तुम्हे यह सुख पूर्वकृत सुकृतसे मिला है यदि अब भी इसपर उपेक्षा करदोगे तो फिर ऐसा सुख कहां प्राप्त करसकोगे? बड़े आश्चर्यकी बात है देखो इस संसारमें कैसी कैसी विचित्र घटनायें बनती हैं एक आदमी जिस वस्तुको असार समझ कर त्याग करना चाहता है उसी वस्तुको दूसरा आदमी सार समझकर ग्रहण करना इच्छता है। 'जंबूकुमार' बोला कि हे सखे? विषय सुख संसारमें 'किंपाकफल' के समान है किंपाकफल, खानेमें मधुर और देखनेमें सुन्दर होता है परन्तु पेटमें जानेकीही देरी है कि आत्मासे प्राणोंको शीघ्रही जुदा कर देता है.

इस प्रकारके विषयजन्य सुखसे जीवको सुख तो सरसोंके दानेसे भी अल्प होता है और दुःख मेरुपर्वतके समान होता है। जैसे कि कोई पुरुष जंगलमें भटक रहाथा कुछ पुन्ययोगसे उसकी नज़र एक सार्थ जाता हुआ पड़ा अत एव वह आदमी उस सार्थके साथ साथही चल पड़ा, वह सार्थ चलता चलता एक बड़ी भयानक अटवीमें जा पहुँचा, दैवयोगसे उस सार्थका उस अटवीमें पहुँचना और उधरसे एक चोरोंकी धाड़का आना उस चोरोंकी धाड़को देखकर सार्थके लोग ऐसे भाग गये जैसे सिकारीको देख मृगोंका टोला छिन्नभिन्न होजाता है। पूर्वोक्त पुरुष जो अभी सार्थके साथ हुआ था वह बिचारा अपने प्राणोंको

लेकर एक बड़ी भारी भयानक अटवीमें जा घूसा । दैवयोगसे उसने उस अटवीमें जातेही मदोन्मत्त और क्रोधसे लाल हुवे हैं नेत्र जिसके गर्जारव करते हुवे साक्षात यमराजके समानही एक बड़े भयानक जंगली 'हाथी' को देखा, 'हाथी' को देखतेही उस बिचारे आदमीके प्राणखुस्क हो गये 'हाथी' भी उस आदमीको देखकर अपनी सूँडको उठाकर उसके पीछे भागा, वह पुरुष भी 'हाथी' को अपने पीछे आता देखकर अपनी जान बचानेके लिए भागने लगा क्योंकि प्राणी मात्रको जीवितके समान अन्य कोई इष्ट आशा नहीं, इस प्रकार वह आदमी 'गेंद' के समान जमीनपर ठोकरें खाता हुआ भागा जा रहा है और पीछे 'हाथी' भी यमराजके समान उसका ग्रास करनेके लिए भाग रहा है, इस अवस्थामें उस आदमीने घासके तृणोंसे आच्छादित एक 'कुवे' को सामने देखा । 'कुवे' को देखकर उसने विचारा कि यदि इस 'कुवे' में गिरजाऊँ तो कोई दिन जीनातो मिलेगा बाहर रहनेसे तो यह दुष्ट 'हाथी' एक मिंटमेंही मेरा ग्रास कर लेगा । यह विचार करके उसने शीघ्रही उस 'कुवे' में झंपापात किया । उस 'कुवे' के किनारेपर एक बड़ा भारी 'बड' का जाड़ था उस बड़के वृक्षकी जड़ें लताके समान कुवेमें लटकती थीं अत एव कुवेमें पड़ते समय उस आदमीके हाथमें 'बड' की जड़ आगई, उन जड़ोंको पकड़कर वह कुवेमें अधर लटक गया, उस समय वह ऐसा मालूम होताथा कि, मानो किसीने रस्सीसे बाँध कर कुवेमें घड़ा लटकाया है । पीछेसे हाथीने आकर शीघ्रही उस कुवेमें सूँड लटकाई परन्तु सूँडका उस आदमीके सिरके साथही जरासा स्पर्श हुआ अत एव उसे ऊपर आकर्षित करनेके लिए असमर्थ हुआ, उस आदमीने नीची नजर करके देखा तो कुवेके अन्दर एक बड़ा

भयानक 'अजगर' मुँह फाड़कर पड़ा है मानो उसे खानेके लिएही मुँह फाड़ रहा है, इसके अलावा कुवेके अन्दर बड़े भयंकर फनाओंको उठाये हुए चार 'सर्प' यमराजके बाणोंके समान फूंकार कर रहे हैं। कुवेके अन्दरकी यह हालत देख कर उस आदमीका कलेजा काँप उठा अत एव वह इस भयंकर दृश्यको न देख सका उसने नीचेसे दृष्टि हटा कर ऊपर वृक्षकी ओर देखा तो जिन साखाओंको वह पकड़ कर लटक रहाथा उन्हीं साखाओंको दो 'मूषक' चटक चटक काट रहे हैं एक स्याम वरणका और दूसरा श्वेत वरणका है। इधर हाथीने उस आदमीको न प्राप्त करके क्रोधान्ध होकर बड़के वृक्षको टक्कर मारी। बड़के वृक्षपर एक बड़ा भारी मधका पूड़ा लगा हुआ था। उस मधके पूड़ेपर लाखोंही मक्खियां बैठी हुई थीं, जिस वक्त वृक्षको हाथीकी टक्कर लगी उस वक्त मधके पूड़का सहत पीकर सबही मक्खियां उड़ने लगीं और उस आदमीको लटकता देख चारों तरफसे उसके शरीरपर चिपट गईं, वह बिचारा मक्खियोंको उडानेमें असमर्थ था क्योंकि उसने दोनों हाथोंसे जकड़कर 'बड़' की साखाओंको पकड़ा हुआ था और 'कुवे' में रहे हुवे जो सर्प तथा यमराजके समान मुँह फाड़े हुवे 'अजगर' उसके गिरनेकी बाट देख रहे थे उनसेभी उसके हृदयमें भय कुछ कम न था।

इस प्रकारकी महति विपत्तिमें पड़ा हुआ था इतनेमेंही मधके पूड़ेसे एक मधका बिन्दु, उस आदमीके मस्तकपर आकर पड़ा और मस्तकसे ढलकता हुआ उसके मुँहमें जा गिरा, उस 'मधुबिन्दु' को चाख कर भाग्य रहित वह आदमी अत्यन्त आनन्द मानने लगा और चारों ओरसे पूर्वोक्त प्रकारकी जो आपत्तियां सिरपर आ रही थीं उन्हें भूल गया। इस कथाका भाव

यह है कि उस आपत्ति ग्रसित मनुष्यके समान संसारी जीव है। उस भयानक अटवीके समान यह संसार है, हाथीके समान मृत्यु है, अजगरके समान घोर नरक है, चार सर्पोंके समान भयंकर दुःखदेनेवाले क्रोध, मान, माया, लोभ, ये चार कषाय हैं, वड़के वृक्षके समान मनुष्यका आयु है और श्वेत, कृष्ण, दोनों मूषकोंके समान आयुरूप वृक्षको काटनेमें तत्पर शुक्ल और कृष्ण दो पक्ष हैं, मधकी मक्खियोंके समान मनुष्यके शरीरमें अनेक प्रकारकी व्याधियां हैं और मधविन्दुके समान संसारमें विषय सुख है। अब आप विचार कीजिये इस प्रकारके सुखको कौन बुद्धिमान् ग्रहण कर सकता है? यदि इस हालतमें कोई विद्याधर अथवा देवता उस आदमीको कुवेमेंसे निकाले तो वह आदमी निकलना चाहे या नहीं? 'प्रभव' बोला कि एसा कौन मूर्ख है जो आपत्तिरूप समुद्रमें डूबता हुआ जहाजके समान उपकारी पुरुषकी इच्छा न करे? यह सुनकर 'जंबूकुमार' बोला तो फिर तारन तरन श्री सुधर्मा स्वामीके होनेपर अपार संसारसागरमें मैं क्यों डूबूँ? 'प्रभव' बोला कि हे भाई! तुमारे मातापिताओंका तुमारे ऊपर पूर्ण स्नेह है और आठोंही स्त्रियांभी तुमारे अनुकूल हैं ऐसे स्नेही स्वजनोंको तुम क्यों त्यागते हो।

॥ सातवाँ परिच्छेद ॥

अठारा नाते.

'जंबूकुमार' बोला—हे प्रभव! संसारमें ऐसा प्राणी कोई भी नहीं जिसके साथ कभी संबंध न हुआ हो 'कुबेरदत्त' के समान सर्व जीव कर्मरूप रज्जुसे बँधे हुवे हैं।

'मथुरानगरी' में कामदेवकी सेनाके समान 'कुबेरसेना' नामकी एक वेश्या रहती थी, उस वेश्याको पहलाही गर्भ हुआ था। एक दिन उस गर्भकी वेदनासे उस वेश्याको अत्यन्त पीड़ा होने लगी अत एव शीघ्रही डाक्टर—वैद्य बुलवाये गये, उन डाक्टरोंने उस वेश्याके पेटको देखकर कहा कि इसे किसीभी प्रकारका रोग नहीं है परन्तु इसके उदरमें युग्म पैदा हुआ है जबतक इस युग्मका जन्म न होगा तबतक किसीभी प्रकारसे इसकी पीड़ा दूर नहीं होसकती। यह सुनकर उसकी माता कहने लगी कि बेटी! इस गर्भसे तुझे दुःसह कष्ट भोगना पड़ेगा अत एव इस गर्भको गिरा देना ठीक है जिससे तुझे कष्ट न सहन करना पड़े और ऐसे गर्भसे अपनेको प्राप्ति भी क्या? जिससे दुःख सहना पड़े और रूप—लावण्यकी हानि हो। यह सुन वेश्या बोली माता! मैं दुःसह्य वेदनायें भी सहन करके गर्भकी रक्षा करूँगी

परन्तु मुझे गर्भापात कराना मंजूर नहीं । इस प्रकार कह कर गर्भकी वेदनाओंको सहन करती हुई समय पूर्ण होनेपर उसने एक बड़े मनोहर युग्मको जन्म दिया, जिसमें एक लड़का और दूसरी लड़की थी । इस युग्मके पैदा होतेही उसकी माताने उसे कहा कि पुत्री ! यह युग्म अपत्य तुझे शत्रुके समान उत्पन्न हुआ है क्योंकि इन अपत्योंने तुझे गर्भमेंही आनेपर मृत्युके दरवाजे तक पहुँचा दिया था फिर अब जीते हुवे इन अपत्योंसे सिवाय हानिके लाभ कुछ न होगा क्योंकि पहले तो ये तेरे स्तनोंका दूध पीकर तेरे योवनको हरन करेंगे और योवन हरन होनेसे वेश्या किसी कामकी नहीं, वेश्याओंके लिए योवन प्राणोंसे भी अधिक रक्षणीय है अत एव पुत्री ! हानिकारक इन बच्चोंपर तू मोह मत कर और मलमूत्रके समान इनको त्याग देनाही योग्य है । यह सुनकर वेश्या बोली माता ! तुम कहती हो सो सत्य है परन्तु कुछ विलंब करो दश दिन में इन बच्चोंका पालन पोषन कर लूँ पश्चात् तुमारी मरजी होगी वैसा किया जायगा, बड़ी मुस्किलसे बुढियाने यह बात मंजूर की, वेश्या बड़ी प्रीतिसे उन बालकोंको स्तन्य पान कराती है और रातदिन उन्हें अपने प्राणोंसे भी प्यारे रखती है । इस प्रकार उन बालकोंको पालन होते हुवे उनको कालरात्रिके समान उन्हे ग्यारवाँ दिन आ पहुँचा, 'वेश्या' ने 'कुबेरदत्ता' नामांकित दो अगूँठी बनवाई और उन दोनोकी अंगुलियोंमें पहनादीं तत्पश्चात् एक बड़ा भारी काष्ठका संदूक बनवाया, उस संदूकके अन्दर दोनों बच्चोंको सुवा दिया और उनके आसपास संदूकमें बहुतसा धन भरके बड़े प्रयत्नसे बन्द करा कर यमुनाकी धारामें बहा दिया और 'कुबेरसेना' अपने नयनोंसे अश्रुधारा बहाती हुई घरपर लौट आई क्योंकि 'कुबेरसेना' ने यह सब

अनर्थ अपनी माताकेही आग्रहसे किया था वरना उसकी इच्छा ऐसा अनुचित कार्य करनेकी न थी। संदूक जलधारामें हंसके समान बहता हुआ प्रातःकालके समय 'शौर्यपुर' नगरके पास पहुँचा, दैवयोगसे दो साहूकार उस वक्त यमुनाके किनारे स्नान करनेको आये हुवे थे, उन्होंने उस संदूकको देख कर पकड़ लिया और खोल कर देखा तो उसके अन्दर बड़ेही मनोहर दो बालक निकले, वे साहूकार दोनोंही निरपत्य थे अत एव एक लड़की और एक लड़केको लेकर खुशी मनाते हुवे अपने अपने घरको चले गये। उन बालकोंके हाथमें जो नामांकित मुद्रिकायें थीं उनसे उन्होंका 'कुबेरदत्त' और 'कुबेरदत्ता' यह नाम ज्ञात होगया था, उन दोनों बालकोंकी पालना पोपना वे साहूकार बड़ेही प्रयत्नसे करते थे, इस लिए वे बाल्यावस्थाको अति क्रमण करके क्रमसे यौवनावस्थाको प्राप्त हुवे और सांसारिक सर्व कलाओंमें शीघ्रही प्रवीण होगये। माता-पिताओंने उनके योग्य वर न देखकर आनन्दपूर्वक उन दोनों-काही परस्पर विवाह कर दिया, अब 'कुबेरदत्त' और 'कुबेरदत्ता' अपने समयको सानन्द व्यतीत करते हैं। एक दिन मध्यानके समय दोनोंही दंपति सारफाँसे खेल रहे थे उस वक्त 'कुबेर-दत्ता' की एक सखीने 'कुबेरदत्त' के हाथसे उसके नामांकित मुद्रिकाको उतारके 'कुबेरदत्ता' के हाथमें दे दी, अपने हाथमें प्राप्त हुई मुद्रिकाको देख कर 'कुबेरदत्ता' सविस्मय विचारमें पड़ गई क्योंकि उसकी मुद्रिका भी इसी नमूनेकी थी 'कुबेरदत्ता' विचारती है कि ये मुद्रिकायें बड़ेही प्रयत्नसे घड़ी गई हैं और किसी विदेशकीही बनी हुई मालूम होती हैं। इन मुद्रिकाओंका एकसाही आकार और एकसीही लिपि है इस लिए इससे यह

मालूम होता है कि हम दोनों कहीं विदेशमें जन्मे हैं और हमारा दोनोंका बहिन-भाईका संबन्ध होना चाहिये क्योंकि इस अपने पति 'कुबेरदत्त'को देख कर मेरे मनमें विकार उत्पन्न नहीं होता और मुझे देख कर इसके हृदयमें भी पत्नीभाव उत्पन्न नहीं होता। न जाने क्या दैव घटना बनी है यह कुछ मालूम नहीं पड़ता परन्तु निश्चय करके हम दोनोंमें भगिनी भ्रातृभाव होना चाहिये। मैं तो यही अनुमान करती हूँ कि हमारी माता अथवा पिताने प्रेमवश होकर हमारे नामांकित ये मुद्रिकायें बनवाई हैं अन्यथा एक आकार और एकही लिपि कभी नहीं होसकती। 'कुबेर-दत्ता' ने यह निश्चय करके ये दोनोंही मुद्रिकायें 'कुबेरदत्त' के हाथमें पकड़ा दीं, 'कुबेरदत्त' भी उन एक आकार और एकसी लिपिवाली मुद्रिकाओंको देखकर चिन्तामें पड़ गया परन्तु उसने भी अपने मनमें पूर्वोक्तही निश्चय किया अत एव उन मु-द्रिकाओंको 'कुबेरदत्ता' को लेकर शीघ्रही अपनी माताके पास गया और शपथपूर्वक यह पूछा कि माता! सत्य बताओ मैं तु-मारे अंगसे पैदा हुवा तुमारा पुत्र हुं? या गोदलिया हुआ हूं? या मेरे माता-पिताओंने मुझे त्यागदिया था तुमने पाला हूँ? अ-थवा कोई अन्य हूँ? क्योंकि, पुत्र कई प्रकारके होते हैं। जब 'कुबेरदत्त' ने इस प्रकार आग्रहपूर्वक पूछा तब उसकी माताने 'सन्दूक' की प्राप्तिसे लेकर सर्व वृत्तान्त कह सुनाया 'कुबेरदत्त' बोला कि माता? जब तुम्हें यह मालूम था कि ये दोनों एक मा-ताकी कुक्षीसे पैदा हुवे हैं फिर जानकर यह अकृत्य करना उ-चित नहीं था। माता बोली पुत्र! हम तुमारे रूपसे मोहित होगये तुमारे लावण्यके सदृश 'कुबेरदत्ता' के सिवाय अन्य कोई भी कन्या न देख पड़ी और तेरे सिवाय उसके अनुरूप वरभी नहीं

नजर आया इसलिए हमसे मुग्धतामें यह अनुचित कार्य होगया, 'कुबेरदत्त' बोला–माता! तुमने यह बड़ा भारी अनर्थका कार्य किया जो हमारा बहिन–भाईका परस्पर विवाह संबंध कर दिया इससे तो हमारी वही माता श्रेष्ठ थी जिसने जन्म देकर पालन-पोषन करनेके लिए असमर्थ होकर हमारे भाग्याधीन करके हमें 'यमुना' की धारामें वहा दिया क्योंकि उसने हमसे किसी प्रकारका अकार्य नहीं कराया यदि उसे अकार्य कराना पसंद होता तो इस प्रकार 'यमुना' की धारमें निष्ठुर होकर न वहा देती, उसने अकृत्य करानेसे हमारे प्राणोंका अपहारही अच्छा समझा। इसी लिए उसने हमें 'संदूक' में वंद करके जलधारामें वहा दिया क्योंकि शास्त्रमें भी घने ठिकाने यह पंक्ति आती है कि–जीवितान्मरणं श्रेयो न जीवितमकृत्यकृत्। माता बोली कि हे पुत्र! खेद मत करो विवाहके सिवाय तुमारा स्त्री–पुरुषवाला अन्य कोई भी अभीतक कर्म नहीं हुआ तुम अभी भी 'कुवेरदत्ता' से यह वृत्तान्त कहकर भाई–बहिनका संबंध रक्खो। अन्य कन्याओंके साथ तुमारा पाणीग्रहण करा देंगे। 'कुबेरदत्त' ने माताका कहना मंजूर करके 'कुबेरदत्ता' से जाकर कह दिया कि भद्रे! तू बड़ी दक्षा और चतुरा है जो तूने मुझे और अपने आपको घोर कर्मोंसे बचाया खैर अभीतक हमारा तुमारा कुछ नहीं बिगड़ा निश्चय हम तुम बहिन–भाई हैं यह सब दैवकी घटना बनी है अब तुम अपने घर जाओ और जो तुम उचित समझो सो करो, 'कुबेरदत्त' इस प्रकार 'कुबेरदत्ता' को कहकर और अपने घरसे कुछ क्रयाणा लेकर व्यवहार करनेके लिए मथुरा नगरीमें चला गया, वहां जाकर व्यपारसे 'कुबेरदत्त' ने बहुतसा धन उपार्जन किया और योवनके उचित अनेक प्रकारके सुखोंका अ-

नुभव करता हुआ वहांपर अपने समयको सानन्द व्यतीत करता है । एक दिन वहां रहनेवाली 'कुबेरसेना' नामकी वेश्याको बहुतसा धन देकर 'कुबेरदत्त' ने अपनी पत्नी बना लिया और हमेशा 'कुबेरसेना' केही घरपर रहने लगा, 'कुबेरदत्त' को 'कुबेरसेना' के साथ विषयसुख भोगते हुवे कुछ दिनोंके बाद उनको एक लड़का पैदा हुआ । पाठकगण आप भूलमें न पड़े तो यह वही 'कुबेरसेना' है जिसकी कुक्षिसे इसी 'कुबेरदत्त' का जन्म हुआ था, संसारकी गति बड़ीही विचित्र और वक्र है । इधर 'कुबेरदत्ता' ने भी अपनी मातासे अपना वृत्तान्त पूछा, माताने संदूककी प्राप्तिसे अन्त तकका वृत्तान्त कह सुनाया ऐसे विचित्र अपने चरित्रको सुन कर 'कुबेरदत्ता' ने संवेगको प्राप्त होकर असार संसारको त्याग दिया और जैनमतकी दीक्षा अंगीकार कर ली और उन दोनो अंगूठीयोंको गुप्त रीतिसे योग्य स्थानपर रक्खा । 'कुबेरदत्ता' दीक्षा ग्रहण करके प्रवर्तनीके साथ रह कर बाईस परिषहोंको सहन करती हुई घोर तपश्चर्यायें करने लगी, 'कुबेरदत्ता' को अनेक प्रकारकी घोर तपस्यायें करते हुवे तपरूप वृक्षका फलरूप अवधि ज्ञान उत्पन्न हुआ, उस वक्त 'कुबेरदत्ता' ने अवधि ज्ञानमें उपयोग दिया कि 'कुबेरदत्त इस वक्त कहां है और उसकी क्या दशा है। 'कुबेरदत्ता' ने अवधि ज्ञानद्वारा 'कुबेरसेना' की संगतिसे पुत्र सहित 'कुबेरदत्त' को मथुरा नगरीमें वास करता देखा परन्तु अकृत्यरूप कीचड़में फँसा हुआ देखकर उसके मनमें बड़ा खेद हुआ । 'कुबेरदत्ता' सध्वी कितनीएक साध्वियोंको साथ लेकर अपने भाई 'कुबेरदत्त' को बोध करनेके लिए उसके नामाङ्कित अँगूठीको लेकर 'मथुरा नगरी' में गई और उसी 'कुबेरसेना' के

घर जाकर धर्मलाभपूर्वक वसतिकी याचना की 'कुबेरसेना' ने भी 'कुबेरदत्ता' साध्वीको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और कहा हे आर्ये! मैं प्रथम वेश्या थी परन्तु इस वक्त मैं एक पतिको अंगीकार करनेसे कुलवधुओंके समान हूँ और कुलवधुओंके समानही यह मेरा वेश है इसलिए मैं आप लोगोंकी भी कृपापात्र हूँ अत एव आप इस मेरे घरके पासके मकानमें उतरकर मुझे अनुग्रहित करो। अवसरको जाननेवाली 'कुबेरदत्ता' साध्वी सपरिवार 'कुबेरसेना' की दी हुई वसतिमें उतर गई 'कुबेरदत्ता' वहां रही हुई अपने समयको स्वाध्याय ध्यानसे व्यतीत करती है। 'कुबेरसेना' भी प्रतिदिन अपने पुत्रसे उत्पन्न हुवे उस स्तनंधय पुत्रको लेकर 'कुबेरदत्ता' के पास आती है और वहांपर उस बालकको खेलनेके लिए छोड़ देती है। एक दिन 'कुबेरदत्ता' ने विचार किया कि—बुध्येत यो यथाजन्तुस्तं तथा बोधयेदिति। यह विचार करके 'कुबेरदत्ता' उस बालकको मीठे मीठे शब्दोंसे संबोधित करके बुलाने लगी और कहती है कि हे बालक! तू मेरा १ भाई लगता है, २ पुत्र लगता है, ३ देवर लगता है, ४ भतीजा लगता है, ५ चाचा लगता है और तू मेरा ६ पोताभी लगता है, इसतरह तेरे साथ मेरा ६ रिस्तोंका संबंध है और जो तेरा पिता है वह मेरा भी १ पिता है, मेरा २ भाई भी है, ३ दादा भी लगता है, ४ पति भी होता है, मेरा ५ पुत्र भी होता है और ६ श्वशुरभी लगता है। इन ६ नातोंका संबंध तेरे पिताके साथ भी है और ६ ही नाते तेरी मातासे भी लगते हैं, क्योंकि जो तेरी माता है वह मेरी भी १ माता लगती है, मेरी २ दादी भी लगती है, ३ भावी भी लगती है, पुत्रकी ४ स्त्री भी लगती है, ५ सासु लगती है और ६ सौकन भी लगती है। इससे हे बालक! प्रकार

तेरे माता-पिताके तथा तेरे साथ मेरा अठारह नातोंका संबंध है तू क्यों रोता है भली प्रकारसे खेल। अवधिज्ञानको धारण करनेवाली सुसाध्वी 'कुबेरदत्ता' जिस वक्त उस बालकको खिलाती हुई पूर्वोक्त अठारह नाते बता रहीथी उस वक्त 'कुबेरदत्त' भी कहीं पासमें रहा हुआ सुन रहा था। उसे यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ और साध्वीके पास आकर बोला कि हे आर्ये! इस प्रकारके परस्पर असंबद्ध वाक्य क्यों बोलती हो? इससे मुझे बड़ा आश्चर्य होता है, जैन साधु-साध्वी प्राणान्त कष्ट आनेपरभी असत्य भाषण नहीं करे और तुम यह असंबद्ध तथा असत्य वाक्य बोल रही हो इससे मैं बड़ाही विस्मित होता हूँ।

यह सुन कर साध्वी 'कुबेरदत्ता' बोली कि मैं असत्य भाषण नहीं करती हूँ सच मुचही यह बालक मेरा भाई लगता है क्योंकि मेरी और इसकी माता एकही है और पुत्र इस लिए कहती हूँ कि यह मेरे पतिके वीर्यसे पैदा हुआ है और पतिका भाई होनेसे यह मेरा देवर भी होता है और मेरे भाईका यह पुत्र है, इस लिए मेरा भतीजा भी है मेरी माताके पतिका छोटा भाई होनेसे यह मेरा चाचा भी होता है और मेरी सौकनके पुत्रका पुत्र होनेसे मेरा पोता भी होता है। अब रही इसके पिताकी बात जो इसका पिता है वह मेरा भाई होता है क्योंकि हम दोनोंको जन्म देनेवाली जननी एकही है और इसका पिता मेरा पिता भी होता है क्योंकि इसकी और मेरी माताका वह पति है और यह मेरे चाचाका पिता लगता है इस लिए मैं उसे अपना पितामह (दादा) कहती हूँ उसके साथ मेरा विवाह संबंध भी हुआ था इस लिए वह मेरा पति भी होता है। मेरी सौकनकी कुक्षिसे उत्पन्न होनेसे वह मेरा पुत्र भी होता है और

मेरे देवरका वह पिता है इस लिए मैं उसे अपना श्वशुर भी कहती हूँ। इस बालककी जो माता है वह मेरी भी माता लगती है क्योंकि मेरा भी जन्म उसीकी कुक्षिसे हुआ है। मेरे चाचाकी वह माता लगती है इस लिए मेरी पितामही (दादी) लगती है। और मेरी भाईकी पत्नि होनेसे वह मेरी भाबी भी लगती है। मेरी सौकनके पुत्रकी पत्नी होनेसे वह मेरी पुत्रवधु भी होती है। मेरे पतिकी माता होनेसे वह मेरी सासु भी निस्संदेह है और मेरे पतिकी वह दूसरी स्त्री है इस लिए मेरी सौकन भी लगती है। 'कुबेरदत्ता' ने 'कुबेरदत्त' को इस प्रकार अठारह नातोंका संबंध समझा कर उसके नामाङ्कित अँगूठी 'कुबेरदत्त' के सामने फेंक दी, 'कुबेरदत्त' उस अँगूठीको देख कर अपना सर्व वृत्तान्त स्वयमेव समझ गया और सखेद मनमें पश्चात्ताप करने लगा, 'कुबेर-दत्ता' के बोधसे संवेगको प्राप्त होकर जैनमतकी दीक्षा ग्रहण की और दुस्तप तपस्यायें करके कालकर स्वर्गकी देवांगनाओंका अ-तिथि जा हुआ और 'कुबेरसेना' नेभी श्राविकाव्रत अंगीकार कर लिया, साध्वी 'कुबेरदत्ता' सपरिवार अपनी प्रवर्तनीके पास चली गई। संसारमें इस प्रकार जो प्राणी चीकने कर्मरूप बंध-नोंसे बँधे हुवे हैं उन्हीं मूढ़ जनोंकी शुक्तिमें रजतके समान बन्धु बुद्धि होती है संसारमें न तो कोई किसीका बंधुही है और न कोई शत्रु, सारीही दुनियाँ अपने अपने स्वार्थको रोती है। इस लिए हे प्रभव! जो स्वयं बंधुओंसे रहित हैं और अन्य जनोंको बं-धुओं तथा बंधनोंसे मुक्त करानेवाले ऐसे क्षमा श्रमण (साधु) लोग हैं वेही सच्चे बन्धु हैं उनके सिवाय अन्य सभी नाम मात्र-केही बन्धु हैं। 'प्रभव' बोला ये सबही बात सत्य हैं परन्तु श्रुतिमें कहा कि—

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गे नैव च नैव च ।
तस्मात्पुत्र मुखं दृष्ट्वा पश्चाद्धर्म समाचरेत् ॥ १ ॥

इस लिए हे सखे! दुर्गतिमें पड़ते हुए अपने मातापिताओंका उद्धार करनेके लिए एक पुत्र पैदा करो, पीछे तुमारा संयम लेना सार्थक होसकता है क्योंकि श्रुतिकार यह भी फ़रमाते हैं कि–पितरो यान्तिनरकेऽवश्यं संतानवर्जिताः ।

'जंबूकुमार' बोला हे प्रभव! पुत्रसेही पिताकी सद्गति होती है यह केवल मोहही है, इसमें सत्यका लेश भी नहीं, इस बातको प्रत्यय करानेमें सार्थवाह 'महेश्वरदत्त' का दृष्टान्त विचारिये । तामलिप्त नामा नगरीमें 'महेश्वरदत्त' नामका एक व्यवहारी रहता था, उसके पिताका नाम समुद्र था, जिस प्रकार अनेक नदियां समुद्रमें जाती हैं तोभी उसे पानीसे तृप्ति नहीं होती । उसी प्रकार इस समुद्र नामा व्यवहारीके यहां भी अनेक जगहसे धनकी आमदनी थी परन्तु उसके हृदयमें संतोषको कभी भी स्थान नहीं मिलता था और अनेक प्रकारके माया प्रपंच करनेमें बड़ी दक्षा 'बहुला' नामकी उसकी पत्नी थी । 'महेश्वरदत्त' का पिता 'समुद्र' लोभाकृष्ट मरके उसी देशमें 'महीष' पने उत्पन्न हुआ, 'समुद्र' के मरनेपर उसकी पत्नी 'बहुला' भी उसके वियोगसे आर्त्तध्यानरूप अग्निमें पतंगताको प्राप्त होकर उसी नगरीमें 'शुनी' (कुतिया) पने पैदा हुई । 'महेश्वरदत्त' की गृहिणीका नाम 'गाङ्गिला' था, 'गाङ्गिला' को अपने रूपका बड़ा घमंड रहता था बल्कि इस गुमराईमें वह अपने पतिको भी कुछ न गिनती थी । 'महेश्वरदत्त' 'गाङ्गिला' को बड़ी सुशीला और सती समझता था । अपने 'श्वसुर तथा सासु' के मरजानेपर 'गाङ्गिला' को घरका सर्वाधिकार मिल गया । 'पति–पत्नी'

धर्मके विचार अभी 'गाङ्गिला' के दृढ न हुवेथे, इस लिए 'गाङ्गिला' ऐसी स्वच्छन्द चारिणी होगई जैसे जंगलमें रहनेवाली मृगी स्वेच्छापूर्वक विचरती है, क्योंकि एकान्त स्थानमें रहनेवाली अकेली स्त्रीका कबतक सतीत्व पल सकता है। 'गाङ्गिला' किसी एक जारपुरुषके साथ यथेच्छ और जब कभी 'महेश्वरदत्त' कहीं बाहर जाता है तब उस अपने जारपुरुषके साथ यथेच्छ क्रीड़ा करती है परन्तु लोकमें यह कहावत है कि–सौ दिन चोरके और एक दिन साधका।

एक दिन 'गाङ्गिला' जब अपने जारपुरुषके साथ अपने घरपे यथेच्छ क्रीड़ा कर रही थी तब दैवयोगसे अकस्मात बाहिरसे 'महेश्वरदत्त' दरवाजेपर आ पहुँचा। 'महेश्वरदत्त' को देखके 'गाङ्गिला' तथा जारपुरुषके प्राण खुस्क हो गये, उस वक्त उन दोनोकी बड़ीही विचित्र दशा होरही थी, दोनोंका शरीर थरथरा रहा था, दोनोंकी जंघायें काँप रही थीं, केश बिखरे हुवे थे, वस्त्र भी शरीरपर एकही था वहभी ऐसा कि जिससे अपने संपूर्ण शरीरको न ढक सकें, शरीर काँपनेसे पाँव कहीं रखते थे और कहीं पड़ता था। इस प्रकार वे बिचारे दोनोंही कान्दिशिक हो रहे थे, ऐसी दशामें 'महेश्वरदत्त' ने आकर शीघ्रही उस जारपुरुषको रीछके समान केशोंसे पकड़ लिया और जारी करनेका उसे यथार्थ फल भुगताने लगा। 'महेश्वरदत्त' ने निर्दय होकर उसे ऐसा मारना शुरु किया जैसे कसाई गायको मारे और जमीनपर लाडकर उसे पाँहोंसे ऐसा मसला कि जैसे 'कुम्हार' घड़े बनानेकी मिट्टीको मसलता है, विशेष क्या कहा जावे 'महेश्वरदत्त' ने उस 'गाङ्गिला' के जारको अधमरा करके छोड़ दिया क्योंकि इन्सानको चोरपर भी वैसा कोप नहीं आता जैसा

कि जारपुरुष पे आता है। जारपुरुष वहांसे अपने प्राणोंको लेकर भागा परन्तु मारके मारे उसका दम लबोंपर आ गया था इस लिए वह थोड़ीही दूरीपर जाकर जमीनपर पड़ गया, उठनेको असमर्थ हुआ हुआ जमीनपर तड़फता हुआ मनमें विचारता है कि धिक्कार है मुझे ऐसे निन्दित कर्मके करनेवालेको मुझे यह फल मीलनाही योग्य था यदि मैं इस राँडके कहनेमें आकर इस अति निन्दित कर्मको न करता तो मुझे कौन कहनेवाला था और मेरी यह दशाही क्यों होती, अच्छा यह मेरे किये कर्मकाही मुझे फल मिला है। इस प्रकार विचार करता हुआ मृत्युको प्राप्त होकर अपनेही वीर्यमें 'गाङ्गिला' की कुक्षिमें पुत्रपने उत्पन्न हुआ। नव मासके बाद 'गाङ्गिला' ने पुत्रको जन्म दिया, पुत्रका मुख देखकर 'महेश्वरदत्त' उसे जारसे उत्पन्न हुवे पुत्रको अपनाही मानता हुआ बड़ा आनन्दित होता है और 'गाङ्गिला' को जो पुंश्चलीका दोष लगा था उसे भी पुत्रके मोहमें भूल गया और पहलेसीही उसे सुशीला समझने लगा। अपनी पत्नीके जारके जीव पुत्रको खिलाता हुआ 'महेश्वरदत्त' बड़ा खुशी होता है और अपने सर्वस्वके समान पुत्रको हमेशा अपनी छातीसे लगाकर रखता है।

एक दिन 'महेश्वरदत्त' के पिताका श्राद्ध था, इस लिए 'महेश्वरदत्त' ने श्राद्धमें मांस पकानेकी इच्छासे एक महीष (भैंसा) मँगवाया, दैवयोगसे वही महीष मँगवाया गया जो 'महेश्वरदत्त' का पिता 'समुद्रदत्त' लोभके वश मरके महीष बना था, उस महीषको मारके श्राद्धमें उसका मांस पकाया गया और कुटुंबके सब जनोंने उसे सानन्द खाया। 'महेश्वरदत्त' ने भी बड़ी खुशीसे भक्षण किया और गोदमें बैठाकर अपने पुत्रके मुखमें भी अपने हाथसे उस मांसके गिरास देने लगा, उस वक्त

'महेश्वरदत्त' अपने मनमें यह समझता था कि मेरेसा दुनियाँमें कोई ही सुखी होगा इस प्रकार खुशी मनाता हुआ जारसे उत्पन्न हुवे उस पुत्रको महीषका मांस खिलाता है। इधर 'महेश्वरदत्त' की माता जो छलकपट करनेसे मरके कुतिया हुई थी वह भी मांसकी इच्छासे वहांपर आपहुँची। 'महेश्वरदत्त' ने भी उस 'कुतिया' को आई देखकर समांसमहीषकी अस्थियां उसके आगे फेंक दीं। अपने पतिके जीव महीषकी हड्डियोंको खाती हुई मारे खुशीके ऐसी पूँछ हलाती थी जैसी रातके समय मंद पवनसे दीपककी शिखा हलती है।

जिस वक्त यह सब बनाव बन रहा था उस वक्त दैवयोगसे मास क्षपणके पारने भिक्षाके लिए एक महामुनि अभ्यागत वहांपर आ पधारे। जैनमुनियोंका यह असूल होता है कि जब वे कहीं भी और किसीके भी घरपर जाकर भिक्षा ग्रहण करते हैं तब वे अपने ज्ञानमें उपयोग देते हैं और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव देखकर योग्य भिक्षा ग्रहण करते हैं। इस लिए उस महामुनिने उपयोग देकर अपने अतिशय ज्ञानबलसे उनका सर्व वृत्तान्त जान लिया और सोचने लगे कि देखो इस संसारकी कैसी विचित्र गति है जो यह 'महेश्वरदत्त' अपने पिताका मांस अपने शत्रुको गोदमें बैठाकर खवा रहा है और अपने पतिकी अस्थियां खाती हुई यह 'कुतिया' किस प्रकार आनन्द मना रही है। अहो! धिक्कार है इस असार संसारको जिसमें रहकर प्राणी मोहके वश होकर अनन्त अकृत्योंको करते हैं, इस प्रकार संसारकी असारताको विचारते हुवे वे महात्मा भिक्षा न लेकर वहांसे पीछे लौट गये। उन महात्माओंको अपने घरपर आये पीछे जाते देखकर 'महेश्वरदत्त' उठकर शीघ्रही महात्माके पीछे दौड़ा और उनके पास जाकर

भक्तिपूर्वक नमस्कार कर हाथ जोड़के बोला भगवन्! सर्व प्रकारकी सामग्री होनेपर मेरे घरसे आप भिक्षा न लेकर पीछे लौट चले इसका क्या कारण? मैने कोई आपकी अवज्ञा भी नहीं की और ना मैं आपका अभक्त हूँ। महात्मा बोले–भाई! केवल मांस देखकरही मैं इस मकानसे पीछे नहीं लौटा किन्तु और भी मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ है, जब महेश्वरदत्तने उनसे आश्चर्यका कारण पूछा तो महात्माने उसके पिताके जीव महीष तथा उसकी माताके जीव कुतियाकी सर्व कथा कह सुनाई। उस आश्चर्यजनक कथाको सुनकर 'महेश्वरदत्त' बोला— भला इस बातका प्रत्यय किसतरह हो? महात्मा बोले यदि प्रत्यय करना है तो इस कुत्तीसे पूछो, तुमारे बापका दबाया हुआ धन तुमारे घरमें बतावेगी। महात्माके कहनेसे जब उस महेश्वरदत्तने कुत्तीसे पूछा तो वह कुतिया पूंछ हलाती हुई महेश्वरदत्तके घरमें जा घुसी और जहांपर उसके पतिने धन गाडा हुआ था उस स्थानको अपने पंजोंसे खोदने लगी, जब खोदते खोदते वहांसे बहुतसा धन निकला तो 'महेश्वरदत्त' को उस बातका प्रत्यय होगया अत एव उसने संसारकी विचित्र रचना जानकर बहुतसा धन अर्थीजनोंको दान देकर संसारसागरसे तारनेवाली दीक्षा ग्रहण कर ली। इसलिये हे प्रभव! यदि पुत्रसेही पिताकी सद्गति होती हो तो महेश्वरदत्तके होते हुवे उसके पिता समुद्रकी यह दशा क्यों होती?।

'समुद्रश्री' जंबूकुमारसे बोली–स्वामिन्! यह काम करते हुवे आप 'बक' नामा कृषकके समान पीछेसे पश्चात्ताप करोगे। यथा 'सुसीम' नामके नगरमें धनधान्यादिसे समृद्ध एक बक नामका कृषक रहता था, वह विचारा सदा ही कंगनी कोद्रा खेतमें बो-

कर उससेही अपना गुजरान किया करता था, एक दिन वर्षा समय आनेपर 'बक' ने अपने खेतको साफ करके उसमें कंगनी-कोद्रा बो दिया, वर्षाका पानी वर्षनेपर कंगनी और कोद्रासे खेत एकदम लहलहा उठा और थोड़ेही दिनोंमें खेत सबजीसे ऐसा शोभने लगा कि मानो खेतकी भूमिने हरे वस्त्रकी साड़ी पहनी हो। इस प्रकार खेतकी शोभा देखकर 'बक' बड़ाही खुशी होता है।

एक दिन कृषक कुछ कार्यवश अपने स्वजनोंके गाँवमें गया, स्वजनोंने उसका बड़ा स्वागत किया और उसके खानेके लिए गुड डालकर मीठी रोटी पकवाई। गुडवाली मीठी रोटियें खाकर 'कृषक' बड़ाही प्रसन्न हुआ और उनसे कहने लगा भाई तुमारा जीवन तो बड़े आनन्दसे व्यतीत होता है, जो इस प्रकार सुधाके समान भोजन खानेमें आते हैं, हम तो हमेशा 'कंगणी तथा कोद्रा' खाकरही समय व्यतीत करते हैं, तुमारे भोजन सा देवताई भोजन तो हमने स्वप्नमें भी कभी नहीं देखा। आज महा पुण्यके योगसे यह भोजन तुमारे यहां खानेको मिला है। भला यह तो बताओ यह सुधाके समान भोजन किस प्रकारसे बनता है? और इसके बनानेकी वस्तुयें कहांपर मिलती हैं? स्वजनोंने कहा, 'कुवे' के पानीसे खेतको सिंचित करके अन्य धान्योंके समान गेहूँ बोये जाते हैं और पकजानेपर अन्य खेतीकेही समान वेभी काट लिये जाते हैं उन गेहूँओंको चक्कीमें पिसवानेसे आटा होजाता है उस आटेसे इस प्रकारके माँड़े पकाये जाते हैं और जो इन माँड़ोंमें मिष्टांश है वह इस प्रकार बनता है, पूर्वोक्त प्रकारसे खेत साफ करके इक्षु (ईख) बोया जाता है और थोड़े थोड़े दिनोंमें अरघट्टद्वारा कुवेके पानीसे सिंचित किया जाता है, जब वह पूर्ण वृद्धिको प्राप्त होता है तब उसको काटके यंत्रमें पील-

कर उसका रस निकालते हैं, उस रसको पकानेसे गुड बनता है। इस प्रकार गुडके भाँडोंकी निष्पत्ति समझकर और वहांसेही गेहूँ तथा इक्षुका बीज लेकर शीघ्रही अपने घरपर आया और खेतमें जाकर कंगणीसे भरे हुवे खेतको काटने लगा। 'बक'की यह चेष्टा देखकर उसके पुत्र बोले हे तात! आप यह क्या अनुचित कार्य करने लगे अधकच्चे खेतको काटते हो दशपांच दिनमें पकजानेपर काटा जायगा तो परिपक्क होनेसे धान प्राप्त होसकेगा और इस वक्त काटनेसे तो यह घासके समान पशुओंकेही काम आवेगा, हमारी आजीवका बिलकुल भ्रष्ट होजायगी। 'बक' बोला हे पुत्रो! इस निरस कंगणी कोद्रासे अब मन उद्विग्न होगया है इस लिए इसको काटके इस खेतमें इक्षु तथा गेहूँ बोऊँगा और उससे तुम्हें सुधाके समान भोजन कराऊँगा।

पुत्र बोले—हे तात! अल्प दिनोंमेंही यह खेत पकनेवाला है इसलिए आप कृपा कर थोड़े दिन ठहर जाओ क्योंकि यह तो कंगणी प्राय पक्कीही हुई है केवल पाँच-सात रोजकीही देरी है। इस पक्की हुई खेतीका सत्यानाश करके 'इक्षु' तथा गेहूँकी आशा करनी यह तो ऐसी है कि जैसे गोदके बालकको छोड़कर पेटकेकी आशा करनी, किसने देखा है इक्षु और गेहूँ होवेंगे या नहीं परन्तु कंगणी तो प्रत्यक्षही पक्की हुई हाथसे जाती है, इस प्रकार अनेक तरहसे समझाने परभी 'बक'ने अपने पुत्रोंका कहना कानपर न धरा और इक्षु तथा गेहूँके लोभमें आकर घासके समान उस कंगणीके खेतको सफम सफा करही डाला। 'बक' ने उस कंगणीको काटके खेतमें हल चलाकर उस खेतको ऐसा बना दिया जैसा कुस्ती लड़नेवालोंका अखाड़ा। अब खेतके समीपमें 'बक'ने एक कुवा खोदना शुरु किया, उस कुवेको खोदते

खोदते बहुतसेही दिन व्यतीत होगये परन्तु वन्ध्या स्त्रीके स्तनोंसे दूधके समान उसमेंसे एकभी पानीका बिन्दु न निकला, पानीका तो कहनाही क्या परन्तु कीचड़ तकभी नहीं प्राप्त हुआ। जब कूवेमेंसे पानीही न निकला तब इक्षु और गेहूँकी तो कथाही क्या इस प्रकार प्राप्त हुवे धान्यको नष्ट करके वह 'बक' हाथही झाड़ता रह गया। इसी प्रकार हे स्वामिन्! आपभी प्राप्त हुवे स्त्री धन सुखकोत्यागकर अधिककी इच्छा करते हो परन्तु याद रक्खो आप भी उस 'बक' के समान पश्चात्ताप करोगे।

यह सुनकर अल्पकर्मी 'जंबूकुमार' मुस्कराकर बोला, हे भोली समुद्रश्री! मैं काकके समान विषयोंमें लुब्ध नहीं हूँ। जैसे कि नर्मदा नदीके किनारे विन्ध्याचलकी अटवीमें यूथाधिपति एक बड़ा भारी हाथी रहता था, युवावस्थामें वह अपने दन्त घातोंसे बड़े बड़े वृक्षोंको तोड़ डालता था और उसके भयसे उस अटवीमें अन्य किसी हाथीका प्रवेश न होता था, स्वच्छन्दतापूर्वक अटवीमें विचरता हुआ बड़े आनन्दसे अपने समयको व्यतीत करता था। इस प्रकार सुखमय योवनको व्यतीत करके जीर्ण वस्त्रके समान वृद्धावस्थाको प्राप्त हुआ, अब वृक्षोंपर दन्ताघात करनेसे असमर्थ हुआ, अत एव अब सूके पत्तेही खाकर उदर पूरती करता है परन्तु उन सूके पत्तोंसे पुराने कुवेके समान उसका पेट कहांसे भरना था, इसलिए वह बिचारा क्षाम कुक्षीही रहकर अपने दिन बिताता है, ऊंचेसे नीचे और नीचेसे ऊंचे जानेमें असमर्थ होकर थोड़ेही प्रदेशमें विचरता है।

एक दिन वह बूढ़ा हाथी विषम प्रदेशसे नीचे उतर रहा था, दैवयोगसे उसका पाँव फिसल गया। दुर्बल होनेसे वह अपने शरीरको न सिंभाल सका अत एव पर्वतके एक शिखरके समान

जमीनपर गिर पड़ा, उठनेको असमर्थ होकर भूख-प्यासादिकी दुस्सह वेदनाओंको सहन करता हुआ कालधर्मको प्राप्त हुआ। अब रात्रिके समय गीदड़ आदि वनचर जानवरोंने उसे गुदाकी तरफसे खाना शुरु कर दिया और खाते खाते उन्होंने उसकी गुदाको एक दरवाजेके समान बना दिया। अब उस दरवाजेके अन्दरसे अनेक प्रकारके जानवर प्रवेश करके उसके पेटका मांस खाते हैं और अपना अपना पेट भरके निकल जाते हैं। इस प्रकार रोजके रोज जंगलके अनेक जानवर उसे अपना रसोई खाना समझकर वहां पेट भरजाते हैं और पेट भरनेपर अलमस्त होकर जंगलमें घूमते हैं, दिनके समय कौवे भी बहुतसे वहां आकर अपना पेट भरते हैं और कितने एक तो उनमेंसे उस करिकलेवरको देखकर चोंचको ऐसा पनाते हैं जैसे श्राद्धके प्राप्त होनेपर द्विज लोग अपनी मूँछोंपर ताव देते हैं। अन्य कौवे अपना पेट भर जानेपर सभी उड़ जाते थे परन्तु एक कौवा ऐसा मांस लोलुपी था कि वह सारा दिनभर मांस खाता हुआ भी तृप्त न होकर रातको भी उस करिकलेवरमेंही रहजाता था। रातदिन काष्ठमें घुणके समान अधिकाधिक उस करिकलेवरको खाता खाता वह हाथीके हृदय तक पहुँच गया। अब वह गुदाद्वार जो गीदड़ आदि वनचर जानवरोंने भट्ठीके समान बना दिया था, ग्रीष्मर्तुके प्रचंड सूर्यके तापसे सूककर संकुचित होने लगा, थोड़ेही दिनोंके बाद वह गुदाद्वार तापसे ऐसा मिल गया कि जिसमें शुचि प्रवेश भी न हो सके। अब वह कौवा बंद किये करंडियेमें सर्पके समान उस निरुद्धद्वार करिकलेवरके अन्दरही रहता है, वर्षाऋतुके आनेपर पानीके प्रवाहसे वह करिकलेवर नर्मदा नदीकी धारामें जा पहुँचा। 'नर्मदा' की वेगवाली तरंगोंसे प्रेरित हुआ

हुआ थोड़ेही समयमें महासागरमें जा पड़ा । पानीकी तरंगोंके झकोलेसे वह करिकलेवरका गुदाद्वार कुछ नर्म होकर खुल गया, रास्ता मिलनेसे वह 'कौवा' बाहर निकला और देखता है तो चारों तर्फ कोसोंतक जलही जल देख पड़ता है । केवल उस हाथीका कलेवरही नावके समान जलपर तर रहा है, किसी तर्फ भी तट नजर नहीं आता । यह दृश्य देखकर कौवेके होस हवास उड़ गये, घने दिनसे उड़नेका अभ्यास न होनेसे अब वह ताकात न रही थी कि जो दश–बीस कोसतक उड़कर जासके तथापि साहस करके वहांसे उड़ा, कुछ दूरतक उड़कर गया परन्तु दूरतक तट नजर न आनेसे पीछेही आकर उसी तरते हुवे करिकलेवरपर बैठ गया, इसी प्रकार कई दफे साहस करके उड़ा परन्तु सफलता न प्राप्त करके वहांही आ बैठता है । अब गुदाद्वार खुलनेपर हाथीका कलेवर पानीसे भरने लगा, कुछ देरके बाद पानी भर जानेसे भारी होनेके कारण वह करिकलेवर समुद्रमें डूब गया और उस कलेवरके डूब जानेपर उस बिचारे कौवेने भी निराश्रित होकर अपने प्राणोंका त्याग कर दिया । हाथीके कलेवरके समान संसारमें स्त्रियां हैं, संसार महासागर है और कौवेके समान विषयवासनारूप मृतके कलेवरमें आसक्त हुआ हुआ यह सांसारिक जीव है । इस लिए मैं तुमारे विषय रागवान होकर उस कौवेके समान संसारसागरमें डूबना नहीं चाहता ।

'पद्मश्री' बोली–स्वामिन् ! आप हमें त्यागकर वानरके समान अत्यन्त पश्चात्तापको प्राप्त होवोगे । एक अटवीमें एक वानर और वानरी रहते थे, उन दोनोंमें परस्पर बड़ा अनुराग था अत एव नित्यही विरह वर्जित रहते थे । जब उनको भूख ल–

गती थी तब दोनों साथही फलफूल खाते थे और वृक्षादि आरोहण भी साथही किया करते थे । उस अटवीमें एक बड़ा भारी तालाव था, उस तालावके किनारे एक बैंतका वृक्ष था, उस तीर्थका यह वड़ा भारी प्रभाव था कि जो उस बैंतके वृक्षपर चढ़कर पशु उस तीर्थमें छाल मारे तो वह देवकुमारके समान रूपको धारण करनेवाला मनुष्य होजाता था और उस पशुसे बना हुआ मनुष्य फिरसे छाल मारे तो वह अपने असली रूपमें आजाता था । दैवयोगसे एक दिन वह वानर-वानरी क्रीड़ा करते हुवे उसी तीर्थकी ओर जा निकले होनहार स्वाभाविकही वानरने उस बैंतके वृक्षपर चढ़कर तालावमें झंपापात किया, तादृश तीर्थके प्रभावसे वह वानर पड़तेही देवकुमारके समान रूपवाला मनुष्य बन गया ।

यह हालत देखकर वानरीने भी वैसेही झंपापात किया और वह भी देवाङ्गनाके समान रूपवाली स्त्री होगई, उस स्त्रीरत्नको प्राप्त करके उस नररत्नने उसे प्रेमपूर्वक आलिङ्गन किया और उस निर्जन वनमें रहकर सानन्द अपने समयको व्यतीत करने लगे, परन्तु जब किसीको कुछ लाभ होता है तब उसे लोभ भी अधिक बढ़ता है । एक दिन वे स्त्री-पुरुष आनन्दसे क्रीड़ा कर रहे थे । पुरुष बोला-हे प्रिये! जिस प्रकार हम वानरसे मनुष्य बन गये हैं वैसेही फिर करनेसे देवता बनें, क्योंकि पशु और मनुष्य जन्मके तो सुखोंका अनुभव कर लिया अब देव संबंधि सुखोंका अनुभव करना चाहिये और देवता बनना अब यह हमारे हाथमेंही है, क्योंकि जब एक दफा इस तीर्थमें पड़नेसे पशुसे मनुष्य होगये तो दुबारा पड़नेसे अवश्यही मनुष्यसे देवता होजावेंगे । यह सुनकर स्त्री बोली-स्वामिन्! अति लोभ करना

अच्छा नहीं, जो कुछ ईश्वरने दिया है उसेही संतोषपूर्वक भोगना उचित है, क्योंकि असंतोषी पुरुष व्याजके लोभमें आकर अपने मूलको भी खो बैठता है । इस लिए अपनेको मनुष्यत्व सुखमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं है, अब अधिक लोभ करना यह ठीक नहीं । इस प्रकार स्त्रीके निषेध करनेपर भी वह नव युवा पुरुष न रह सका, देवत्वकी इच्छासे पूर्वोक्त तीर्थमें फिरसे झंपापात किया । हम पहले कह आये हैं कि उस तीर्थका यह प्रभाव था कि जो पशुसे मनुष्यपनेको प्राप्त हुआ हो वह यदि फिरसे झंपापात करे तो अपने असली स्वरूपमें आजाता था । इसलिए वह पुरुष पड़तेही अपने असली स्वरूप वानरपनेको प्राप्त होगया और अपनी वैसी दशा देखकर बड़ा पश्चात्ताप करने लगा परन्तु अब कर क्या सकता था । उस स्त्रीको भी फिरसे पड़नेके लिए बहुतही इसारे किये परन्तु वह कब पड़ने लगी थी । अब वह वानर पशुवृत्तिसे अपने जीवनको व्यतीत करता है और वह वियोगिनी सुन्दरी बिचारी अकेली जंगलमें वनवृत्तिसे अपने समयको व्यतीत करती है । एक दिन वह सुन्दरी गंगाकी मिट्टीका तिलक लगाकर लताके समान केशोंको खोलकर केतकीके पुष्पोंका मुकुट धारणकर और नलिनीकी नालोंका हार गलेमें पहरके एक वृक्षके नीचे बैठी थी । दैवयोग उसमय उस जंगलमें राजपुरुष सिकार खेलते फिर रहे थे, उन्होंने अपसराके समान रूपवाली उस सुन्दरीको उस निर्जन वनमें देखके बड़ा आश्चर्य माना और विचारने लगे कि क्या ये जंगलकी अधिष्ठात्री देवी है? या कोई देवाङ्गना इस अरन्यमें क्रीड़ा करनेको आई है? इस प्रकार साश्चर्य उन राजपुरुषोंने उस सुन्दरीके पास जाकर उसका वृत्तान्त पूछा, उन राजपुरुषोंको देखकर उस बिचारी डरती

सीने कुछ अपना वृत्तान्त संक्षेपसे कह सुनाया । राजपुरुषोंने उस सुन्दरीको पकड़ लिया और अपने नगरमें लेजाकर राजाको सौंप दिया । उस सुन्दरीके रूपको देखकर राजा एकदम मोहित होगया अत एव उसे अपनी पटरानी बना ली, क्योंकि राजाके सारे अन्तेउरमें ऐसी रूपवती स्त्री न थी । अब वह असूर्यंपस्या राजपत्नी अपने समयको सानन्द व्यतीत करती है । इधर उस वानरको भी जंगलमें फिरते हुवे किसी 'मँदारी' ने पकड़ लिया और उसे अनेक प्रकारका नृत्यादि कृत्य सिखाया । उस वानरको गाँव गाँवमें नचाकर 'मँदारी' अपने जीवनको व्यतीत करता है । दैवयोग एक दिन वह 'मँदारी' उस वानरको लेकर उसी राजसभामें चला गया, जहांपर वह वानरपत्नी सुन्दरी राजपत्नी बनके बैठी थी । 'मँदारी' ने वानरसे नाच कराना शुरु कराया परन्तु राजाके अर्धासनपे बैठी हुई अपनी पूर्व प्रियाको देखकर वानर नाचता हुआ बंद होगया और उसकी आँखोंमेंसे टपाटप अश्रु पड़ने लगे । 'मँदारी' ने बहुतही ताड़ना तर्जना की परन्तु वह ज्यूंसे त्यूं न हुआ । इस प्रकार रुदन करते हुवे वानरको उस सुन्दरीने पैछान लिया और विचार करने लगी कि ओहो यह तो वही वानर है, जिसके साथ मैं पूर्वजन्म वत अरण्यमें क्रीड़ा किया करती थी, अहो! अब इस बिचारेकी क्या दशा होगई । यह अपनी इस दुर्दशाको तथा मेरी उन्नत दशाको देख और मेरे निषेध करनेपर भी उस तालावमें दूसरे दफेके पतनको याद करके रोता है, भला अब रोनेसे क्या बन सकता है? । रानीने उठके एकान्तमें उस वानरको समझाया और कहा कि हे कपे! जिस वक्त जैसा समय आवे जीवको वैसाही समतापूर्वक भोगना चाहिये, अब पश्चात्ताप करनेसे कुछ नहीं होसकता, अब तो गले

पड़ा ढोल बजानाही पड़ेगा। इस प्रकार अपनी पूर्व प्रियाके वचनको सुनकर वह वानर फिर नृत्य करने लगा, यह घटना देखकर राजाके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ कि जो इस प्रकार 'मँदारी' की ताड़ना तर्जनायें करनेपर भी नहीं नाचा उस वानरको इस रानीने क्या मंत्र सुना दिया जिससे यह रोता हुआ बंद होगया और फिरसे नाचने लगा। राजाके पूछनेपर रानीने अपना पूर्व वृत्तान्त सब कह सुनाया और राजा–रानी सुखसे समय बिताने लगे। इसलिए हे स्वामिन्! आप भी प्राप्त हुवे विषय संबंधि सुखको त्यागके उस वानरके समान पश्चात्ताप करोगे।

'जंबूकुमार' बोला–हे पद्मश्री! मैं अंगारकारकके समान विषयरूप पानीका प्यासा नहीं हूँ, किसी एक देशमें (कोयले करनेवाला) एक आदमी रहता था। एक दिन ग्रीष्मर्तुमें वह पीनेके लिए बहुत सारा पानी लेकर अङ्गार करनेके लिए एक बड़ी भयानक अटवीमें गया और वहां जाकर उसने बड़ी भारी भट्ठी चढ़ाई परन्तु ग्रीष्मर्तुके सूर्यका प्रचंड ताप पड़ता था और कुछ भट्ठीका ताप लगा इसलिए उसके शरीरमें दाह ज्वरके समान गरमीने प्रवेश कर दिया, प्यास लगनेसे उस पानीको पीना शुरु किया परन्तु प्यास और भी अधिक बढ़ती गई। धीरे धीरे सर्व पानी पीया गया परन्तु उसके शरीरमें ऐसा दाह घुस गया कि ज्यों ज्यों पानी पीया त्यों त्यों अधिकही प्यास लगती गई। पानी पासमें न रहनेसे वह बिचारा 'अंगारकारक' घबराने लगा क्योंकि वहां दूर दूर तक कहीं भी पानीका ठिकाना न था इस लिए प्यासके अत्यन्त तृषित होकर वहांसे भाग निकला। प्यासके मारे प्राण कंठमें आये हुवे हैं, शरीर ग्रीष्मर्तुके तापसे तपा हुआ है अत एव वह बोलनेसेभी असमर्थ हुआ है। इस

हालतमें पानीकी इच्छासे भागता हुआ जा रहा है। दैवयोग रास्तेमें एक बड़ी सघन छायावाला सहकारका वृक्ष था, उस सहकारकी सांद्र छायाको देखकर वह बिचारा थका हुआ विश्राम लेनेके लिए वहांपर बैठ गया, वृक्षका शीतल पवन लगनेसे उसे कुछ शान्ति हुई और कुछ निद्रा भी आगई, निद्रा आनेपर उसने एक स्वप्न देखा, उस स्वप्नमें उस 'अंगारकारक' ने वापी 'तालाव' कुवे आदि सर्व जलाशय पी लिये परन्तु उसकी तृप्ति न हुई, स्वप्नमेंही फिर उसने एक पुराना कुवा देखा, उस कुवेका पानी सुख जानेसे उसमें अब केवल कीचड़ही शेष रहा था उसमेंसे पानी लेनेके लिए असमर्थ होकर उस कीचड़को जीभसे चाटने लगा। भला विचार करो कि जिसने पानीसे संपूर्ण भरे हुवे वापी तड़ागादिको पी लिया वह कभी इस कीचड़वाले पानीसे तृप्त होसकता है?।

उस 'अंगारकारक' के समान यह संसारी जीव है और 'वापी' तड़ागादिके जलके समान स्वर्गादि सुख समझने, जो जीव स्वर्गादि सुखोंसे भी तृप्त न हुआ वह जीव कीचड़के समान मनुष्य जन्म संबंधि सुखोंसे कदापि तृप्त नहीं होसकता। इसलिए हे 'पद्मश्री!' वृथा आग्रह क्यों करती है। संसारकी विचित्रताका विचार कर।

'पद्मसेना' बोली—स्वामिन्! सब जीव संसारमें कर्माधीन हैं और कर्मके अनुसारही सुख दुःख पाते हैं। इसलिए आप संतोषपूर्वक संसारके सुखभोगो और अनेक प्रकारकी युक्तियां देनी रहने दो क्योंकि संसारमें प्रवर्तक और निवर्तक ऐसे अनेकही दृष्टान्त हैं जैसे 'नूपुर पंडिता' तथा 'गोमायु' की कथा।

॥ आठवाँ परिच्छेद ॥

नूपुर पंडिता.

राजगृहनगरमें 'देवदत्त' नामका एक सुनार (सोनी) रहता था, 'देवदिन्न' नामा उसका पुत्र था, स्त्री-चरित्रोंमें बड़ी दक्षा और रूपलावण्य संपन्ना 'दुर्गिला' नामकी उस देवदिन्नकी पत्नी थी। एक दिन वह 'दुर्गिला' अच्छे आभूषण तथा वस्त्र पहरके कामदेवके बाणोंके समान अपने तीक्ष्ण कटाक्षोंसे युवा पुरुषोंके मनोभावको भेदन करती हुई नदी स्नान करनेके लिए घरसे निकली। 'दुर्गिला'ने शीघ्रही उस नदी तट भूमिको अलंकृत किया और स्नान करनेके लिए शरीरसे धीरे धीरे वस्त्र उतारने लगी। कामदेवकी दुर्ग भूमिके समान अपने स्तन द्वयको दिखाती हुई उसने अपने 'कंचुक'को उतारा, उस कंचुक तथा उत्तरीयको अपनी सखीको समर्पण करके और एक बारीक वस्त्रसे अपने शरीरको आच्छादित करके मरालीके समान नदीमें तरने लगी। तरंगिणीने भी अपनी लंबी लंबी तरंगरूपी भुजाओंसे चिरकालसे मिली हुई सखीके समान सर्वांगसे आलिंगन किया। 'दुर्गिला' स्नान करती हुई ऐसी भाषित होती थी जैसे स्वयंभू रमण समुद्रमें सुरांगना हो। नदीमें स्नान करते समय 'दुर्गिला' नदी तटपर

घूमनेवाले नगरके युवा पुरुषोंकी ओर तीक्षण कटाक्ष भी फैंकती जाती थी। पानीसे भीजे हुवे बारीक एक वस्त्रसे उसका सर्वांग देख पड़ता था, दूसरे कामकी चेष्टायें करती जाती थी फिर कहनाही क्या था। 'दुर्गिला' जब इस प्रकार जलक्रीड़ा कर रही थी उस समय नदी तटपर एक दुःशील युवा पुरुष घूम रहा था और वह 'दुर्गिला' की ये सब चेष्टायें भली भांति देख रहा था अत एव वह युवा पुरुष न रह सका, दाव लगाकर यों बोला—हे भद्रे! यह नदी और नदीके निकट वर्ति वृक्ष तेरेसे पूछते हैं कि तूने भली प्रकारसे स्नान किया है न? यह सुनकर 'दुर्गिला' बोली—इस नदीका कल्याण हो और नदीके निकटवर्ति वृक्ष चिरकाल तक वृद्धिको प्राप्त हों और तुम्हारे जैसे सुस्नान पूछनेवालोंके समीहितको मैं पूर्ण करूँगी। 'दुर्गिला' के व्यंग भरे वचनको सुनकर वह युवा पुरुष अपने मनमें बड़ा हर्षित हुआ और कुछ देर तक टकटकी लगाकर उसकी ओर देखता रहा मनही मन विचारने लगा कि यह कौन है? और इसका मकान कहां होगा? इसके साथ किस प्रकार मेरी बातचीत होसकती हैं?। इस प्रकार उसके मनमें संकल्प विकल्प होने लगे। उस नदीके पासही एक–दो बेरीके वृक्ष थे वहांपर बहुतसे छोटे छोटे लड़के बेर खानेके लिए फिर रहे थे, उस युवा पुरुषने 'दुर्गिला' का पता निकालनेके लिए उन लड़कोंको देखकर एक उपाय निकाला, उन लड़कोंके पास जाकर ईंट–पत्थर आदिसे बेरीके बहुतसे बेर तोड़ डाले, उन बेरोंको वे लड़के बड़ी खुशीसे उठा उठाकर खाने लगे, इस अवसरमें उस युवा पुरुषने उन लड़कोंसे पूछा कि यह नदीमें स्नान करनेवाली स्त्री कौन है? और इसका घर कहां है?। वे लड़के बोले क्या तुम इसे नहीं जानते? यह

तो 'देवदत्त' सुनारके लड़केकी स्त्री है और भीड़ी गलीके पास इसका घर है अभी थोड़ेही दिन हुवे इसका विवाह हुआ है इसके विवाहके समय तो बड़ी धूमधाम हुई थी। यह सुनकर वह युवा पुरुष कुछ और भी उनके लिए बेर तोड़के अपने रस्ते पड़ा। 'दुर्गिला' भी स्नानक्रीड़ाको छोड़के हृदयमें उस पुरुषका ध्यान करती हुई अपने मकानपर चली गयी परन्तु मन उसका उस युवा पुरुषमेंही रहा। इधर वह 'नव युवक' भी अपने घर जाकर रातदिन इसी बुना उधेड़ीमें लगा रहता है कि किस दिन, किस रातको और किस जगह उस सुन्दरीके साथ मेरा मिलाप हो। 'दुर्गिला' के भी हृदयमें रातदिन यही चुटपुटी लग रही है कि कौनसा समय हो? जिस समय उस 'नव युवक' के साथ समागम होवे। इस प्रकार आशालताको बढाते हुवे उन दोनोंको बहुतसा समय व्यतीत होगया, एक दिन एक बुड्ढी 'तापसनी' उस युवा पुरुषके घरपर भिक्षा लेनेके लिए आई, उस जोगनको देख नव युवकने विचारा कि यदि हमारी कार्यसिद्धि होसके तो इस जोगनसे होसकती है वरना और कोई उपाय नहीं सूझता। यह समझकर उस 'बुढिया जोगन' को बहुतसा खानपान दिया और कहा कि माई मेरा कुछ कार्य है और वह कार्य तेरेसे होनेवाला है यदि उस कार्यको करेगी तो कार्यके होनेपर तुझे अच्छी तरह खुश करूँगा, यह कहकर उस नव युवकने अपना कार्य निवेदन कर दिया और कहा कि मेरे ऊपर उस स्त्रीका बड़ा अनुराग है इस लिए तू वहांपर जा और उससे यह खबर ला कि उसका विचार मुझसे मिलनेका है या नहीं? और है तो कहांपर मिलना होसकता है? और किस दिन?। 'जोगन' स्त्रीचरित्र और दूती कर्म करनेमें बड़ी निपुण थी अत एव वह उस कार्यको अं-

गीकार करके 'दुर्गिला' के मकानपर भिक्षाके बहानेसे गई और कहा कि हे भद्रे! ऐसा गुणवान तथा कामदेवके समान रूपवान नव युवक पुरुष मिलना बड़ा दुर्लभ है, जबसे तुझे उसने नदीपर देखा है तबसे उसे क्षणभर भी कल नहीं पड़ती और रातदिन तेरेही नामकी रटना रटता है इस लिए तू उसके साथ क्रीड़ा करके अपने नव योवनको सफल कर। जब उस दूतीने 'दुर्गिला' के मकानपर जाकर ऐसा कहा उस वक्त 'दुर्गिला' अपने घरके बरतन माँज रही थी, इस लिए उसके हाथ काले होरहे थे। उस बुढिया जोगनका कथन सुनकर 'दुर्गिला' उस संकेतको समझ गई और अपने मनका भाव छिपाकर कटु शब्दोंसे उसका तिरस्कार करती हुई बोली—अरी डुटनी क्या आज तूने भाँग पीई है? जो तू इस प्रकार असंबद्ध और अश्रोतव्य वाक्य बोल रही है? क्या तूने हमे कुलटा स्त्री समझा हुआ है? जा तेरी खैर है तो यहांसे जलदी निकल जा तेरे दर्शनसेही महा पाप लगता है संभाषणकी तो कथाही क्या। इस प्रकार तिरस्कार करके 'दुर्गिला' ने उस 'जोगन' को अपने घरसे निकाल दिया और जाते समय उसकी पींठपर स्याहीसे भरा हुआ हाथ मारा, स्याहीसे भरे हुवे हाथ मारनेका आशय न समझकर वह 'जोगन' क्रोधमें भरी हुई उस दुःशील पुरुषके पास आई और कहने लगी। अरे मृषावादी तूने नाहक उस बिचारी सतीको क्यों बदनाम किया है? तू तो कहता था वह मेरे ऊपर रागवाली है परन्तु वह तो तेरा नाम लेनेसेही हजारों गालियें सुनाती है वह तो बड़ी सुशीला तथा कुलीना मालूम होती है, उस सुशीलाके विषय मेरा दूती कर्म कुछ काम नहीं आसकता, मुझे उसने कठोर वचनोंसे तिरस्कारपूर्वक अपने मकानसे बाहर निकाल दिया और चलते

समय उसने क्रोधमें आकर स्याहीसे भरे हुवे हाथकी मेरी कमर-पर बड़े जोरसे एक चपेट लगाई । यह कहकर 'तापसी' ने अपनी पींठपर 'दुर्गिला' की मारी हुई चपेट दिखाई । उस च-पेटमें स्याहीसे भरी हुई पाँचों अंगुलियां स्पष्ट माल्रम होती थीं, इस लिए उस युवा पुरुषने 'दुर्गिला' के आशयको समझ लिया कि उसने मुझे कृष्णपंचमीके दिन मिलनेका संकेत दिया है । इस संकेतसे माल्रम होता है कि वह बड़ी चतुरा है, देखो तो सही उसने किस प्रकार अपने भावको छिपाकर मुझे पंचमीका संकेत दिया । इस तरह उसकी चतुराईकी प्रशंसा करता हुआ विचारने लगा अहो! अभीतक भी उस सुन्दरीके मिलापमें बड़ा भारी अंतराय होरहा है उसने दिनका संकेत तो दिया परन्तु किसी हेतुसे स्थानका संकेत न देसकी, इस लिए अभी तक भी कार्य अधुराही रहा । यह विचारके फिर उसी तापसीसे कहने लगा कि, माई तू उसका आशय नहीं समझी वह मेरे ऊपर पूर्ण प्रेमवाली है, तू उसकी गाली गुपतारपे कुछ खयाल मत कर मैं तुझे बहुतसा धन दूँगा तू मेरी प्रार्थना स्वीकार करके एक दफे फिर उसके मकानपर जा और पूर्ववत प्रार्थना कर। 'योगन' बोली-अरे मूढ! क्यों अपने मनको नाहक भटकाता है? तेरी कार्यसिद्धि बड़ी दुर्लभ है मुझे भेजकर फिरसे क्यों उस बिचारी सतीके चित्तको संतप्त करता है वह तो तेरा नाम तक भी सु-नना नहीं चाहती और तू उसके ऊपर लट्टु होरहा है, ऐसी जगह मेरा फिरसे जाना ठीक नहीं, यह सुनकर वह युवा 'पुरुष' बोला-माई! चाहे जो हो परन्तु मेरी प्रार्थना स्वीकार करनीही पड़ेगी। तापसी बोली-लो खैर मैं फिर जाती हूँ परन्तु अर्थसिद्धिमें तो निःसंदेह संदेह है पर वहांपर मेरा तिरस्कार होनेमें

संदेह नहीं, यह कहकर 'जोगन' शीघ्रही 'दुर्गिला' के मकान-पर गयी और वहां जाकर मीठे वचनोंसे बोली कि हे भद्रे! अपनी समान वयवाले और कामदेवके समान रूपवाले उस युवा पुरुषको अङ्गीकार करके अपने यौवनको सफल कर।

'दुर्गिला' ने उस जोगनका यह कथन सुनकर और अपने भावको छिपाकर पूर्ववत तिरस्कारपूर्वक क्रुधितके समान होकर उस बुढ़िया 'जोगन' को गलेसे पकड़के अपने घरके पासकी अशोकवाड़ीमेंसे निकाल दिया और क्रोधमें आकर बोली– जोगन! याद रखना यदि फिर मेरे मकानपर आई तो तुझे जानसे मरवा डालूँगी। जोगन इस प्रकारके तिरस्कारको सहन करती हुई और मारे शर्मके अपने मुँहको नीचा किये हुवे वहांसे चुपचुपाती निकल गई और शीघ्रही उस दुःशील पुरुषके मकानपर जाकर झुँझलाकर बोली–आग लगो तुमारे अनुरागमें और भ्रेरमें पड़ो तेरा धन, इतनी तो कमाई भी नहीं हुई जितनेका लँहगा फट गया, आजतक मेरा किसीने भी इतना तिरस्कार न किया था, जितना तुमारे निमित्तसे इस राँडने किया है। 'जोगन' को गुस्सेमें आई हुई देखकर वह 'युवक' बोला–माई माफ़ कर जो हुआ सो हुआ तू मुझे दश गालियें दे ले, परन्तु जो कुछ नौबत बीती है सो शान्तिपूर्वक सुना। 'जोगन' बोली– सुनाऊँ क्या उसने तो मुझे जातेही गरदनसे पकड़के अपने घरकी अशोकवाड़ीके बीचमेंसे निकाल दिया और बड़ेही कठोर वचनोंसे मेरा तिरस्कार किया। अब हरगिज़ भी मैं वहां न जाऊँगी। इस बातको सुनके उस नव युवकने विचारा कि यदि अशोकवाड़ीमेंसे निकाली है तो निश्चय उस धीमतीने स्थानका संकेत दिया है वह मुझे कृष्णपंचमीके दिन उसी अशोकवाड़ीमें मिलेगी

जिसमेंसे इस बुढियाको निकाला है। खैर अब कार्यसिद्धि तो निःसंदेह होगी, पंचमीका दिन जल्दी आवे तो ठीक हो, कुछ धन देके 'जोगन' से बोला–माई! जो हुआ सो हुआ किसीके सामने बात न करना, 'जोगन' खर्ची लेकर अपने रस्ते पड़ी। कृष्णपंचमीका दिन आनेपर बड़ी खुशी मनाता हुआ वह 'युवक' रात पड़नेपर अँधेरेमें उसकी अशोकवाड़ीकी ओर चला। इस वक्त 'दुर्गिला' उस वाड़ीमें रात पड़तेही आ बैठी और दरवाजेकी ओर टकटकी लगाकर उस पुरुषकी प्रतिक्षा कर रही है। इतनेमेंही वह पुरुष भी सामनेसे चोरके समान चला आ रहा है। उस पुरुषको देखके 'दुर्गिला' रोमांच होगई और ऐसी खिल उठी जैसे, सारी रातकी मुरझायी हुई 'कमलिनी' प्रातःकालमें सूर्यके दर्शनसे खिल जाती है। उस 'युवक' ने भी अपनी दोनों भुजा उठाकर उस अपनी प्राणप्यारीको सर्वांगसे आलिङ्गन किया, आजतक ये स्त्री–पुरुष एक चित्तवाले थे परन्तु शरीरसे भिन्न थे, आज इनका शरीर भी एक होगया है। इस प्रकार उन्होंने निरभय होकर स्वेच्छापूर्वक क्रीड़ा की और अपने वियोग संबंधि दुःख सुखकी बातें करते हुवे रात्रिके दो पहर व्यतीत कर दिये। अब वह पूर्वसा अँधकार नहीं रहा, चंद्रमा अपनी समस्त किरणोंको लेकर गगनमें आचढ़ा और तारे भी अपनी नयी २ द्युतिसे उसको सहायता देरहे हैं और पवन भी सुखकारी मन्द मन्द चल रहा है, चंद्रमाकी शीतलता किसके चित्तको प्रमुदित नहीं करती? और फिर कामीजनोंका तो कहनाही क्या? परन्तु वियोगके समय यह चंद्रमाकी शान्तिदायक चाँदनी उनको अग्निके समान आचरण करती थी परन्तु बहुत दिनोंमें आज वह दुःखमय समय दूर होगया है और सुखमय समय प्राप्त हुआ है। आनन्दपूर्वक

अपने चिरकालके विरह दुःखको दूर कर यथेच्छ मनोभिलाष पूर्ण किया । जब वे दोनों काम संभोगके श्रमसे थक गये तब उन्हें 'चंद्रमा' की शीतल चाँदनी तथा मन्द पवन लगनेसे कुछ निद्रा आगई । दैवयोग जिस वक्त वे गलेमें हाथ डाले और एक हाथ सिरके नीचे दिये तथा एक दूसरेकी जाँगपर जाँग चढ़ाये सो रहे थे उस वक्त 'देवदत्त' को जंगल जानेकी हाजत होगई अत एव वह अपनी चार पाईसे उठकर और पानीका लोटा भरके उसी 'अशोकवाड़ी' में पहुँचा जहांपर 'दुर्गिला' और उसका जारपुरुष सोये पड़े थे ।

'देवदत्त' उन दोनोंको उस अवस्थामें देखकर चकित हो-गया और विचारने लगा कि धिक्कार हो इस कुलटा '[1]स्नुषा' को जो निर्लज्ज होकर परपुरुषके साथ सो रही है। 'देवदत्त' पूर्ण तया उस जार पुरुषको पैछान न सका अत एव वह निश्चय करनेके लिए फिर अपने घरमें गया परन्तु वहां जाकर देखा तो उसका पुत्र 'देवदिन्न' तो सोरहा है और 'दुर्गिला' का पताही नहीं । 'देवदत्त' ने निश्चय कर लिया कि यह राँड अ-वश्यही पुंश्चली है, देखो कैसी निरभय होकर परपुरुषके साथ दुराचरण कर रही है और देखनेमें कैसी सुशीला मालूम होती है । अब पुत्रको किस तरह निश्चय कराऊँ कि यह असती है । इस वक्त यह सघन निद्रामें सो रही है यदि मैं इसके पाँवसे नू-पुर निकाल लूँ और प्रातःकाल जब मैं उस नूपुरको अपने पुत्रको दिखाऊँगा तब वह मेरे कथनको सत्य मान लेगा, यह वि-चारकर उसने चोरके समान धीरेसे 'दुर्गिला' के पाँवसे 'नूपुर'

---

१ लड़केकी बहु.

निकाल लिया और निकालकर घरपर लौट गया। प्राय समय जनोंको निद्रा भी अल्पही आती है, जिस वक्त 'दुर्गिला' के पाँवसे 'देवदत्त' 'नूपुर' निकालके ले गया उस वक्त उसकी आँखें खुल गई और उसने अपने सुसरे 'देवदत्त' को पैछान लिया अत एव उसने शीघ्रही अपने जारको जगाया और बोली हम दोनोंको सोते हुवे मेरा सुसरा देख गया है और वह मेरे पाँवसे 'नूपुर' भी निकालकर ले गया, अब तुम अपने घर चले जाओ प्रातःकाल मेरे ऊपर बड़ी आपत्ति आनेवाली है, तुमसे बने उतनी सहायता देना। यों कहकर जार पुरुषको तो रुकशद किया और आप अपने पतिकी शय्यामें जाकर सो गयी और थोड़ीही देर बाद गाढालिंगनकर उसकी निद्रा उड़ा दी और बोली स्वामीनाथ! यहां तो बड़ी गरमी लगती है चलो अशोकवाड़ीमें चलके सोवें वहां बड़ा ठंडा पवन चलता होगा।

'देवदिन्न' स्त्रीचरित्रोंसे बिलकुल अनभिज्ञ था इस लिए वह स्त्रीके कथनको विशेष मान देता था। 'देवदिन्न' 'दुर्गिला' के कहनेसे अशोकवाड़ीमें वहांपरही जाकर सो गया, जहांपर अभी थोड़ी देर पहले 'दुर्गिला' और उसके 'जारपुरुष' को देवदत्तने सोते हुवे देखा था। 'देवदिन्न' को 'अशोकवाड़ी' का शीतल पवन लगनेसे शीघ्रही निद्रा आगई क्योंकि अक्षुद्र मनवालोंको प्रायः जल्दीही नींद आजाती है। कुछ देरके बाद पतिको जगाकर बड़े अपशोस भरे हुवे वचनोंसे बोली–स्वामिन्! यह क्या कोई आपके कुलका आचार है? जिसे मैं मुखसे कहती हुई भी शरमाती हूँ, अभी मैं तुम्हारे साथ आलिंगन करके सोरही थी, तुमारा पिता यहां आकर मेरे पाँवसे नूपुर निकाल ले गया, अन्य समय भी पुत्रकी स्त्रीको हाथ लगाना उचित नहीं। भला पतिके

साथ सोते हुवे समयकी तो बातही क्या? यह कितनी धृष्टताकी बात है मुझे कहते हुवे भी लज्जा आती है परन्तु उन्हें ऐसा नीच कर्म करते हुवे भी लज्जा न आई?।

'देवदिन्न' बोला-यह तो बड़ा अनुचित्त काम हुआ, क्या बुड्ढेकी अक्कल मारी गई है, प्रातःकाल होनेपर मैं पिताको अच्छीतरह धमकाऊँगा ऐसा कार्य करना तो सर्वथा अयोग्य है। 'दुर्गिला' बोली इसमें सुबहका क्या काम है? ऐसे अनुचित कार्यमें तुरतही ठपका देना चाहिये। 'देवदिन्न' बोला यह समय ठपका देनेका नहीं है तू निःसंदेह रह मैं अवश्य तेरे पक्षमें हूँ और तेरे सामनेही प्रातःकाल पिताको आक्षेपपूर्वक उलाँभा दूँगा। 'दुर्गिला' बोली-स्वामिन्! जैसा इस समय बोल रहे हो वैसाही प्रातःकाल करना, 'दुर्गिला' ने इस प्रकार अपने ऐबको छिपाकर विचारे बुड्ढेके माथे कलंक रख दिया। देखो दुनियांकी विचित्रता उलटा चोर कोतवालको दंडे। प्रातःकाल होनेपर स्त्री-प्रधान 'देवदिन्न' अपनी शय्यामेंसे उठके पिताके पास गया और तौरी चढ़ाकर बोला-पिताजी! आपको ऐसा कुत्सित कर्म करते हुए शर्म नहीं आई? उसके सोती हुईके पाँवसे 'नूपुर' निकाल लिया, तुम्हें यह क्या बुढ़ापेमें सूजा?

'देवदत्त' बोला-भाई! यह तो दुःशीला है रात मैंने इसे परपुरुषके साथ सोती हुई अशोकवाड़ीमें देखा है और तुझे विश्वास करानेके लिएही मैंने नूपुर निकाला है। 'देवदिन्न' बोला-जब तुमने नूपुर निकाला था तब वह मेरे पासही तो सोरही थी और कौन वहांपर अन्य पुरुष आया था? ऐसा कुत्सित कर्म करके तुमने मुझे भी लज्जित किया, उस बिचारी सतीको असतीका कलंक लगाते हो अकल ठिकाने है या नहीं? बस अब ज्यादा बड़ बड़

मत करो उसका नूपुर दे दो । 'देवदत्त' बोला–भाई! तू क्यों जोसमें आता है, मैं सच कहता हूँ यह असती है जब मैंने उसके पाँवसे 'नूपुर' निकाला था तब तू अन्दर बरामदेमें सोरहा था, मैं अपनी आँखोंसे देखके पीछे नूपुर निकाला है। जब इस प्रकार पिता–पुत्रका परस्पर संवाद होरहा था तब 'दुर्गिला' भी वहांपर आ पहुँची और कहने लगी कि इस मिथ्या कलंकको मैं कभी भी सहन न करूँगी क्योंकि कुलीना स्त्रियोंको कथन मात्र दोषारोपण भी श्वेत वस्त्रमें [1]मषी बिन्दुके समान होता है। अत एव मैं इस दोषारोपणको न सहन करके दैविक क्रियासे अपने शीलका महात्म्य दिखलाऊँगी।

'राजगृह' नगरके समीप एक 'शोभन' यक्षका मन्दिर था उस मन्दिरमें उसकी मूर्ति थी, मूर्तिका यह प्रभाव था जो दोषित आदमी होता था वह उसकी जंघाके नीचेसे निकलता हुआ फँस जाता था और जो निर्दोष होता था वह उसकी जंघाके नीचेसे साफ निकल जाता था।

'दुर्गिला' बोली–शोभन यक्षकी जंघाके नीचेसे निकल कर मैं सारे नगरको अपने अखंड शीलका प्रभाव दिखलाऊँगी, यदि मेरे अन्दर लेशमात्र भी दोष होगा तो मैं उसकी जंघाके नीचेसे न निकल सकूँगी। यह बात 'देवदत्त' ने मंजूर कर ली कि जरूर ऐसाही होना चाहिये, देखो इससे शीलकी कैसी परिक्षा होती है। 'दुर्गिला' ने अपने जारको कहला दिया कि जब मैं शोभन यक्षकी पूजा करनेको जाऊँ तब तुमने पागल बनके मेरे गलेमें लिपट जाना। 'दुर्गिला' स्नान कर पूजाकी

---

१ स्याही.

सामग्री ले बहुतसे स्वजनोंके साथ यक्षराजकी पूजा करने चली। रास्तेमें पूर्व संकेतित उसका जार फिर रहा था, 'दुर्गिला' को देखके पागल बनकर कवर्गके समान झट उसके गलेमें लिपट गया, लोगोंने पागल समझकर उसे छुड़ा दिया। 'दुर्गिला' ने फिरसे स्नान करके पूजाकी सामग्री लेकर 'शोभन' यक्षकी पूजा की और हाथ जोड़कर बोली—हे यक्षराज! यदि मैंने आजतक अपने पति और इस पागल आदमीके सिवाय अन्य पुरुषसे अंग स्पर्श भी किया हो तो बेशक मुझे अटकाना और जो इन दो पुरुषोंके सिवाय अन्य पुरुषको संस्पर्श न किया हो तो सर्व जनसमुदायके समक्ष प्रसन्न होकर मुझे शुद्धिदायक हो। 'दुर्गिला' इस प्रकार कहकर यक्षकी जंघा नीचेसे निकलनेको चल पड़ी। 'यक्षराज' विचारमें पड़ गये कि अब क्या करना चाहिये? यह स्त्री अवश्य दोषित है परन्तु इसने मुझे ऐसे वाक्योंसे बाँध लिया है कि छोड़ दूँ तो भी ठीक नहीं और न छोडूँ तो भी ठीक नहीं। 'यक्षराज' इस विचारमेंही पड़े हुवे थे इतनेमें तो 'दुर्गिला' शीघ्रही उसकी जाँघके नीचेसे निकल गई। 'दुर्गिला' की शील परिक्षा होजानेपर वहां खड़े हुए जनोंके मुँहसे एकदम 'महासती महासती' यह शब्द उद्घोषित हो उठा और राजाआदि प्रधान पुरुषोंने उसके गलेमें फूलोंकी माला डाली। बड़ी धूमधामसे उसे नगरमें प्रवेश कराया गया। 'दुर्गिला' की छल भरी शील परिक्षासे नगरवासियोंके मनमें यह निश्चय बैठ गया कि 'दुर्गिला' के समान अखर्व गर्वा महासती शायदही नगरमें हो। नूपुर उतारनेसे जो कलंक लगा था, उस नूपुरजन्य कलंकको दूर करनेसे उस दिनसे लेकर 'दुर्गिला' का नाम नगरमें 'नूपुर पंडिता' प्रसिद्ध होगया। स्वजन संबंधि भी इसी नामसे पुकारने लगे। अ-

पने पुत्रकी पत्नीसे पराजित हुवे हुवे 'देवदत्त' को रातदिन निद्रा नहीं आती और हमेशा इसी चिन्ता चितामें दहकता रहता है कि अहो! स्त्रीचरित्र कैसे विचित्र हैं। आंखोंसे देखी हुई बातको भी असत्य सिद्ध कर दिया, जगतमें मुझे निर्दोषीको बदनाम करके और बिचारे 'शोभन' यक्षको भी ठगकर अपने दुराचारको छिपाकर इस राँडने मुफ्तमें नूपुर पंडिताका खिताब ले लिया। 'देवदत्त' इस प्रकारके विचारमें रातदिन मग्न रहता है, योगी पुरुषके समान 'देवदत्त'की निद्रा बिलकुलही उड़ गई। 'देवदत्त'को निद्रा न आनेकी बात धीरे धीरे राजाके पास पहुँची, अत एव राजाने उसे योग्य नौकरी देकर अपने अन्तेउरकी रक्षा करनेके लिये रख लिया।

अब 'देवदत्त' पहरेदार बनकर राजाके अन्तेउरकी रक्षा करने लगा। जिस दिन 'देवदत्त' राजाके अन्तेउरमें पहरेदार बना था उसी दिन एक पहर रात जानेपर अन्तेउरमेंसे एक रानी निकली परन्तु पहरेदारको जागता हुआ देखकर पीछेही लौट गयी, थोड़ीसी देरके बाद फिर निकली और उसे जागता देख फिर पीछे लौट गयी, इस प्रकार बारंबार होनेपर 'देवदत्त' पहरेदारके मनमें शंका उत्पन्न हुई कि यदि यह स्त्री मुझे बैठा देखकर बारंबार पीछे लौट जाती है तो अवश्यही कुछ न कुछ कारण होना चाहिये परन्तु इस कारणको जानना भी चाहिये कि यह मेरे सोजानेपर क्या करना चाहती है। यह जाननेके लिए 'देवदत्त' टेढ़ा होकर दंभकी निद्रासे लंबे लंबे घुरड़ाटे लेने लगा। रानी फिरसे बाहर निकली और उस नूतन पहरेदारको सोता देखके खुशी होती हुई गवाक्षके दरवाजेपर आई। गवाक्षके दरवाजेके नीचे परली ओर 'राजवल्लभ' नामका हाथी खड़ा था उस हाथीवानके साथ रानी मिली हुई थी इस लिए वह रोज हाथीवानके पास जाया करती

थी, हाथीवानने हाथीको सिखाया हुआ था वह रानीको देख कर उसे अपनी सूँडसे आहिस्तासे उतार लेता था, उस दिन भी पूर्ववत उतार लिया । रानी बड़े हर्षसे हाथीवानके पास गई, हाथीवान 'रानी' को देख एकदम क्रुधित होगया और हाथीके बाँधनेकी संकलसे 'रानी' को मारा और कहने लगा—हरामजादी! आज इतनी देर लगाकर क्यों आई मैं कितनी देरसे यहां तेरी राह देख रहा हूँ । 'रानी' हाथ जोड़कर बोली—स्वामिन्! देर लगनेमें मेरा कोई दोष नहीं, आज राजाने कोई नवीनही पहरेदार रक्खा है वह बहुत देरतक जागता रहा इस लिए मैं जलदी न आसकी, अब उसके सोजानेपर आई हूँ इस लिए देर लगी है वरना मैं अपने टैमको कभी न चूकती । जब इस प्रकार 'रानी' ने अपनी देरीका कारण सुनाया तब 'हाथीवान' का क्रोध दूर होगया और प्रसन्न होकर उसके साथ यथारुचि दुराचरण किया । रात्रिके पीछले पहरमें उस साहसी 'हाथीवान' ने 'रानी' को हाथीके सूँडद्वारा पूर्वोक्त रास्तेसे चढ़ा दिया, 'रानी' कुशलतासे अपने महलमें चली गई । सुवर्णकार 'देवदत्त' अपनी आँखोंसे यह सब चरित्र देख अपने मनमें बड़ा विस्मित हुआ और विचारने लगा, अहो! असूर्यपस्या राजपत्नियोंकी भी इस प्रकार विडंबना होती है, तो फिर अन्य स्त्रियोंकी तो कथाही क्या, जो हमेशा रातदिन बाहर भीतर स्वतंत्रतासे विचरती हैं उन स्त्रियोंका शील रक्षण किसतरह होसकता है? । इसतरह अपने मनको समझानेपर 'देवदत्त' की सब चिन्ता दूर होगई । चिन्ता दूर होजानेपर 'देवदत्त' चादर तानके सोगया उसे टह्रा होतेही ऐसी नींद आगई मानो ६ महीनेसे जाग्रितही था । रात्रिके व्यतीत होनेपर सूर्यनारायण अपनी सहस्र किरणोंके सहित

आकाशमंडलमें आ पधारे राजाकी कचहरीमें दरबार लगने लगा। नौकर चाकर सब अपने अपने कामपर लग गये, परन्तु 'देवदत्त' पहरेदारकी नींद अभीतक नहीं उड़ी। उसे निश्चिन्त सोता देखकर लोग परस्पर विचारते हैं कि भाई! 'देवदत्त' कभी रात्रिके समय भी न सोता था और आज इतना दिन चढ़नेपर भी निःशंक होकर सोरहा है तो इसमें अवश्य कुछ न कुछ कारण होना चाहिये। एक नौकरने राजसभामें जाकर राजाको इतलाह दी की हजूर! आपका नवीन पहरेदार आज निःशंक होकर सोरहा है अभीतक भी उसकी नींद नहीं उड़ी।

राजा कुछ विचारके बोला—भाई! उसके सोनेमें अवश्य कुछ न कुछ कारण होना चाहिये वरना उसे कारण विना कभी नींद नहीं आवे, खैर उसे सोने दो जब वह अपने आप जागे तब उसे हमारे पास लाओ। 'राजा' की इस प्रकारकी आज्ञा पाकर नौकर पीछे लौट गया। 'देवदत्त' पहरेदार सात दिन, रात तक गाढ़ी निद्रामें पड़ा सोता रहा, आठवें दिन नींद उड़ जानेपर उसे राजसभामें लेजाया गया 'राजा' ने उसे पूछा—क्यों भाई! तुझे कभी भी निद्रा न आती थी और अब सात दिन तक निःशंक होकर सोया इसका कारण क्या है?। 'देवदत्त' को राजाकी तरफ देखकर कुछ कंपारीसी आने लगी। 'राजा' बोला—'देवदत्त' तुझे मैं सर्व प्रकारसे अभयदान देता हूँ मगर इस बातका कारण अवश्य बताना पड़ेगा, राजाकी आज्ञा पाकर 'देवदत्त' ने निडर होकर रात्रिका सर्व वृत्तान्त राजाको कह सुनाया। राजाने बहुत कुछ धन देकर 'देवदत्त' को विदा किया। राजाके अन्तेउरमें बहुतसी रानियां थी उनमेंसे कौनसी कुलटा है यह पता लगानेके लिए राजाने एक काष्टका हाथी बनवाया और उस

हाथीको अन्तेउरमें लेजाकर रानियोंसे कहा कि मुझे आज रातको स्वप्न आया है इस लिए मेरे सामने तुम सबही शरीरसे वस्त्र उतारके क्रमसे इस हाथीके ऊपर चढ़ो । राजाकी इस प्रकार आज्ञा पाकर सब रानियोंने अपने तनसे वस्त्र उतार दिये, क्योंकि सती स्त्रियोंको पतिआज्ञा बलीयसी होती है पति चाहे जैसी आज्ञा करे परन्तु पतिव्रता स्त्रीका धर्म है कि वह अपने पतिको प्रसन्न रखनेके लिए वैसाही करे । उन रानियोंमेंसे एक रानि बोली–मैं इसपर नहीं चढूँगी मुझे तो इससे बड़ा डर लगता है । यह सुनकर राजाको बड़ा गुस्सा आया उस वक्त राजाके हाथमें एक फूलोंका गुच्छा था, राजाने वही उस रानीके फेंककर मारा । फूलोंका गुच्छा लगतेही रानी मूर्छा खाकर जमीनपर गिर पड़ी । राजाने उस रानीकी यह चेष्टा देखकर अपने मनमें निश्चय कर लिया कि जो इस प्रकार फैल भरती है और इस काष्ठके हाथीसे डरके इसके ऊपर नहीं चढ़ती तो अवश्यमेव यह वही दुराचारिनी है जो रातको हाथीवानके पास जाती है । राजाने शीघ्रही उसके शरीरसे वस्त्र खैंच लिया और शृंखलाओंकी मारसे लाल सुर्ख हुई उसकी कमरको देखा । उसके शरीरकी यह हालत देखकर राजा मुस्कराकर बोला–अरे रंडे ! मदोन्मत्त हाथीके साथ क्रीड़ा करती है और इस काष्ठके हाथीसे डरती है । हाथीके बाँधनेकी शृंखलाओंकी मारसे आनन्दित होती है और फूलोंके गुच्छेकी मारसे मूर्छित होती है ।

यह कहकर राजा क्रोधाग्निसे जलता हुआ महलसे बाहर निकल गया । कचहरीमें जाकर राजाने हाथीवानको बुलवाया और उसे यह आज्ञा दी कि अमुक रानीको 'राजवल्लभ' हाथीपर चढ़ाके वैभारगिरि ऊपर लाओ हम वहां जाते हैं । राजाका

विचार यह था कि दुराचारिनी रानी तथा हाथीवानको उसी हाथीपर चढ़ाकर पर्वतसे गिराया जाय इससे इन तीनोंकोही सजा मिल जायगी । राजाका चेहरा तपा हुआ देखके हाथीवानके दिलमें खटक गई कि आज कुछ न कुछ कालेमें धौला है। खैर राजाज्ञा बलीयसी उसी रानीको राजवल्लभ हाथीपर बैठाकर वैभारगिरि पर्वतपर जानाही पड़ा । इस बातकी चरचा तमाम नगरमें फैल गयी । अत एव नगरवासी हजारोंही जन वहांपर आगये । वैभारगिरिका जो बड़ाही विषम प्रदेश था जहांपर अन्य पशुको भी चढ़ना बड़ा मुस्किल होता था, उस पर्वतपर राजाने हाथीवानको हाथी चढ़ानेकी आज्ञा दी । 'हाथीवान' ने राजाकी आज्ञासे बड़ी खूबीसे राजवल्लभ हाथीको उस विषम प्रदेशपर चढ़ा लिया । जब हाथीवान पर्वतके शिखरपर हाथीको ले गया तब राजाने आज्ञा दी कि हाथीको यहांसे नीचे गिराओ। यह सुनकर नगरवासियोंका भी कलेजा धड़कने लगा और हाथी एक पाँवको अधर उठाके ३ तीन पाँवके आधारसे खड़ा होगया, यह देखकर नगरवासि जनोंका हृदय करुणारससे पसीज गया। अत एव वे हाथ जोड़कर बोले–हे राजरत्न! स्वामीकी आज्ञाको पालन करनेवाले इस बिचारे पशुका मारना योग्य नहीं, राजाने इस बातको न सुनकर फिर आज्ञा दी कि हाथीको नीचे गिराओ। हाथीने अपने दोनों पाँव अधर उठा लिये और दो पाँवसे खड़ा होगया, नगरवासि जनोंने फिर पूर्ववत प्रार्थना की परन्तु क्रोधमें आये हुए मनुष्यको हितकारी बात भी जहरके समान मालूम होती है। राजाने तीसरी दफे भी नगरवासियोंका कुछ न सुना और क्रोधमें आकर बोला–अरे दुष्टो! अभीतक मुझे अपना मुँह दिखा रहे हो। शीघ्रही पर्वतसे गिरके अपने आत्माको प्रायश्चित्त

भागी करो। राजाका यह वचन सुनकर हाथी एकही पाँवके आधारसे खड़ा होगया और नगरवासियोंकी आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगी। नगरवासी और हाहाकार करते हुए बोले-महाराज! आपने जो धारा है आपसोही करेंगे परन्तु इस करिरत्नका मरण देखनेके लिए हम सर्वथा असमर्थ हैं, इसको मारनेसे आपका निःसंदेह दुनियाँमें अपयश फैलेगा और ऐसा करिरत्न भी आपको प्राप्त होना बड़ा दुर्लभ होगा। इस लिए हे स्वामिन्! कार्य और अकार्यमें आप स्वयं विचारशील हैं, इस कार्यको विचारके और हमारे ऊपर कृपा करके इस 'करिरत्न' को अभयदान दें। राजा बोला-यदि तुम लोगोंका ऐसाही आग्रह है तो तुम मेरे कहनेसे इस हाथीवानको हाथीकी रक्षाके लिए कहो। राजाकी आज्ञा पाकर उन सब जनोंने हाथीवानसे कहा-भाई! ऐसे विषम शिखरपर तुने हाथीको चढ़ा तो दिया परन्तु किसी तरह इसे नीचे भी उतार सकता है या नहीं?। हाथीवान बोला-यदि राजा मुझे और रानीको अभयदान देवे तो बड़ी कुशलतासे हाथीको नीचे उतार सकता हूँ। सब जनोंने राजासे उनके अभयदानकी प्रार्थना की, राजाने सर्व जनसमुदायके आग्रहसे वैसाही मंजूर किया, हाथीवानने धीरे धीरे बड़ी कुशलतापूर्वक हाथीको नीचे उतार दिया। राजाने रानी तथा हाथीवानको हुकम कर दिया कि तुम मुझे अपना मुँह मत दिखाओ और शीघ्रही मेरे राज्यसे बाहर निकल जाओ। इस प्रकार राजाकी आज्ञासे जान बचाकर वे दोनोंही वहांसे भाग निकले। उनको जाते हुवे मार्गमें दिन अस्त होनेपर एक गाँव आया, उस गाँवके बाहर एक किसी देवताका मठ था, उस मठमें रानी और हाथीवान दोनों अपनी रात व्यतीत करनेके लिए सोरहे। इधर मठके समीपवाले गाँवमें प्राय प्रतिदिन

चोरी होती थी, उस दिन अर्ध रात्रिके समय पहरेदारोंने उस चोरको देख लिया और पुकारकर उसके पीछे भागे, दैवयोग वह चोर भी उसी मठकी ओर भागा जिसमें रानी और उसका जार हार्थीवान सोरहा था । जब कहीं भी जान बचानेका ठिकाना न मिला तब वह चोर मठके अन्दरही आघुसा और पहरेदारोंने भी आकर उस मठको चारों तरफसे घेर लिया कि प्रातःकाल होनेपर चोर हमारे कबजेमें आजायगा । अर्ध रात्रिका समय था और फिर कृष्णपक्ष ऐसा तो अन्धकार था कि अपना हाथ अपने आपको न देख पड़ता था, वह चोर जन्मान्धके समान अंधकारमें टटोलता टटोलता वहांही जापहुँचा जहांपर वे दोनों मुसाफर सोरहे थे । चारों तर्फ हाथ मारते हुवे 'चोर' के हाथ हार्थीवानको लगे परन्तु निरभय होकर सोया था इस लिए उसकी निद्रा न खुली । जब पासमें देखा तो राजपत्नी भी वहांही सोई पड़ी थी, चोरका हाथ लगतेही उसकी झट नींद उड गई और उसकी नींद उड़तेही उसके हृदयमें विकार भी जाग्रित होगया । कुछ मन्द स्वरसे राजपत्नी बोली—कौन है? चोरने भी धीरेसे कहा कि मैं चोर हूँ और मेरे पीछे मुझे पकड़नेके लिए बहुतसे आदमी आरहे हैं इस लिए मैं यहां अपनी जान बचानेके लिए आघुसा हूँ । राजपत्नी बोली—हे महाशय! यदि तू मुझे अपनी पत्नी बनावे तो निःसंदेह मैं तेरी जान बचा सकती हूँ । चोरने विचार किया कि मेरा बड़ा पुण्यका उदय है जो मेरी पत्नी बनेगी और मेरी जान भी बचावेगी । भला सुगन्धिवाला सुवर्ण मिले तो उसे कौन छोड़े? । यह विचार कर चोर बोला—भला तू मुझे बता तो सही जिससे मेरे दिलमें विश्वास हो, किस तरह मेरी जान बचा सकेगी ।

राजपत्नी बोली—जब प्रातःकाल नगरके लोग तुझे पकड़नेको आयँगे तब मैं तुझे अपना पति बतला दूँगी और कहूँगी कि हम दो जने मुसाफर हैं, रात पड़ जानेपर यहां सोरहे थे। यदि यह तीसरा चोर हो तो बेशक इसे पकड़ लो। चोरने यह सुनकर विचारा कि बेशक यह मुझे बचा सकेगी। अत एव उसने उसका कहना मंजूर कर लिया और उसी वक्त उसके हृदयकी तप्त बुझाई। प्रातःकाल होनेपर गाँवके सुभटोंने शस्त्र हाथमें लिये हुवे जिस मठको घेरा हुआ था उसका दरवाजा खुलवाकर क्रोधसे कुछ त्रिकुटी चढ़ाकर उन तीनोंसे पूछा कि सच बताओ तुमारेमें चोर कौन है?। यह सुनकर राजपत्नी उस चोरकी ओर हाथ उठाकर बोली—भाई! ये तो मेरा पति हैं हम दोनों मुसाफर रास्तेमें दिन अस्त होनेपर इस मठमें सोरहे। हमें क्या मालूम था कि सुबह ऐसी नौबत बीतेगी। यह सुन नगरके सुभटोंने विचारा कि जिसे यह अपना पति बताती है इसके चिन्ह चक्र तो चोरकेसे मालूम होते हैं मगर चोरके घरमें अप्सराके समान रूपवाली और वस्त्राभरणोंसे विभूषित ऐसी स्त्री कहांसे होसके?। अवश्य यह कोई राजकन्या अथवा किसी बड़े घरानेवाले शेठ साहूकारकी पुत्री है, क्योंकि इसकी आकृतिही कह रही है कि यह चोरकी पत्नी नहीं, भला जिसके वस्त्र और आभरण इस प्रकारके हैं क्या उसका पति चोरीसे अपने जीवनको बिताता होगा?। यह विचार करके उन सुभटोंने उस स्त्री और असली चोरको छोड़ दिया और बिचारे निर्दोष हाथीवानको चोर समझकर पकड़ लिया। उस नगरमें घने दिनोंसे चोरी हुआ करती थी नगरवासी लोग बड़े तंग होगये थे इस लिए राजाने उस चोरको सूलीका हुक्म

देदिया। सज्जनो! संसारमें ऐसी कोई बात नहीं और ऐसा कोई कार्य नहीं कि जिसे मनुष्य न जान सके मगर स्त्रीचरित्रसागरमें हरि हरादि देवताओंने भी गोते खाये परन्तु इसके पारको न पा सके। भला जिनको दुनियां सृष्टीके कर्त्ता मानती है जब उनको भी अपनी इच्छानुसार इसने नाच नचाये हैं तो फिर सामान्य बुद्धिवाले मनुष्य मात्र इसके तीक्षण बाणोंसे अपने प्राणोंका घात करें तो इसमें क्या नवाई! जो मनुष्य इन स्त्रियोंके फंदेसे बच गया उसको समझलो कि वह संसारके सर्व दुःखोंसे बच गया। राजाने निरापराधी बिचारे हाथीवानको चोर समझके सूलीपर चढ़ा दिया। हाथीवानको जब सूलीपर चढ़ाया गया तब उसे बड़ी कड़ी प्यास लग रहीथी, इसलिए वह सूलीपर भी पानी पानी पुकारता था, परन्तु राजाके भयसे उसे किसीने भी पानी न पिलाया। इतनेमेंही उस मार्गसे 'जिनदास' नामका एक श्रावक आ निकला, उसको देखकर भी उसने पानीकी पुकार की 'जिनदास' बड़ा दयाधर्मी था अत एव उस दुखीको देखके जिनदासके हृदयमें करुणा नदी बहने लगी 'जिनदास' ने विचारा कि इस विचारे पामरको दुर्गति जाते हुएको किसी तरह भी बचाऊँ। यह समझके 'जिनदास' बोला--भाई! तू घभरा मत मैं तेरे लिए अभी पानी लाता हूँ, परन्तु जबतक मैं पानी लेकर आऊँ तबतक तू इस महा मंत्रका जाप कर। जाप यह था (नमोऽर्हद्भ्यः) चोर बड़े उच्च स्वरसे इस महामंत्रका जाप करने लगा। 'जिनदास' राज पुरुषोंको समझाके उनकी अनुमतिसे पानी लाया, मगर जब 'जिनदास' उसके पास पानी लेकर आया तब उस महामंत्रका जाप करते हुए उसके प्राण निकल गये।

हाथीवान बड़ा दुःशील और पापी जीव था इस लिए वह दुर्गतिकाही अतिथि होनेवाला था परन्तु पूर्वोक्त महामंत्रके प्रभावसे

वह मरके व्यन्तर जातिका देव हुआ। इधर वह राजपत्नी और चोर दोनों आगे चल पड़े, मार्गमें जाते हुए उन्हें जलसे पूर्ण एक नदी आई, नदीमें पानीका पूर बड़े बेगसे जारहा था इस लिए वह चोर बोला—प्रिये! नदीका बेग बड़ा दुस्तर है और तेरे शरीर-पर गहने बड़े भारी हैं इस लिए तुझे एक दफा उतारनेमें मैं अ-समर्थ हूँ, पहले तेरे गहने और वस्त्र नदीके परले किनारे रख आऊँ और दूसरी दफे आकर तुझे ले जाऊँगा। तू अपने सर्व वस्त्राभरण उतारके इस झाड़की ओटमें खड़ी होजा मैं अभी पीछे लौटकर आता हूँ और बड़ी कुशलतासे तुझे अपनी पींठपे चढ़ा-कर ले जाऊँगा, तू निडर होकर निःसंदेह यहां खड़ी रहे देख में अभी आता हूँ। यों कहकर चोर उस पुंश्चलीके वस्त्राभरण ले और उसे अलफनंगी कर झाड़की ओटमें खड़ी करके नदीपार होगया। चोर नदीपार होकर विचारता है। जिसने मुझ अनजानपे रा-गिनी होकर अपने प्राणप्यारे पतिको मरवा डाला ऐसी कुलटा स्त्रीसे मेरा क्या हित होसकता है। ऐसी स्त्रियोंका राग हलदीके रंगके समान होता है, जैसे हलदीका रंग जरासा ताप लगनेसे झट उड़ जाता है वैसेही कुलटा स्त्रियोंका राग भी क्षणभंगुर होता है। संसारमें ऐसी स्त्रियोंके वश होकर प्राणी अपने प्राणोंका घात करते हैं और भवान्तरमें नरकादि दुःखोंका अनुभव करते हैं, स्त्रीके लोलपी जीव उभय लोकसे भ्रष्ट होकर अपने आत्माको सदाके लिये अधोगतिका अतिथि बनाते हैं। अब मुझे वस्त्राभरण तो मिलही गये हैं मैं क्यों नाहक अपने आपको इस आपत्तिमें डालूँ। यह विचारके चोर पीछे देखता हुआ और हरिणके समान कूदता हुआ वहांसे अपने घरको भागा, चोरको जाता हुआ देखकर वह नग्निका हाथ उठाकर वोली—अरे मैंने तो तेरे ऊपर अनहद

उपकार किया है तो भी तू मुझे निराधारिणीको छोड़के कहां जाता है? । चोर बोला-राक्षसीके समान तुझे देखके मेरे हृदयको कंपारी आती है, बस देवि अब मैं तुझे नमस्कार करता हूँ । यह कहकर चोर अपने घरको चला गया, वह नग्निका राजपत्नी वहांही उस सरकड़ेके झाड़ नीचे खड़ी रही । इधर वह हाथी-वानका जीव जो दोषारोपणसे मरके महामंत्रके प्रभावसे व्यन्तर जातिका देव हुआ था । उसने अपने अवधि ज्ञानमें उपयोग देकर उस 'पुंश्चली' को पूर्वोक्त अवस्थामें देखा, अत एव उसे बोध करनेके लिए वह 'व्यन्तरदेव' गीदड़का रूप धारण कर और मुँहमें एक मांसका टुकड़ा लेकर वहां आया जहांपर वह पुंश्चली नग्निका खड़ी थी । उस वक्त जलमेंसे निकल कर एक मछली नदीके किनारेपर आगई, गीदड़ उस मछलीको देखकर अपने मुँहसे मांसके टुकड़ेको छोड़के मछलीकी ओर भागा, मगर गीद-ड़को देखकर वह मछली झट पानीमें बड़ गई और उधर उस मांसके टुकड़ेको भी आकाशसे आकर 'चील' उठा गई । यह हालत होनेपर गीदड़ चारों ओर टुमर टुमर देखने लगा । यह सब कार्रवाई वह 'पुंश्चली' सरवनकी ओटमें खड़ी हुई देख रही थी । वह उस वक्त बड़ी दीन और दुखी थी तथापि यह कौतुक देखकर उससे न रहा गया, अत एव वह यों बोल उठी—

मांस पेशीं परित्यज्य मीनमिच्छसि दुर्मते ।
भ्रष्टो मीनाच्च मांसाच्च किं जम्बुक निरीक्षसे ॥ १ ॥

अर्थात् अपने मुँहमें आये हुए मांसके टुकड़ेको छोड़कर मछलीकी इच्छा करता है । अब मांसके टुकड़े और मछलीसे भ्रष्ट होकर हे दुर्मते ! गीदड़ क्या देखता है? यह सुनकर गीदड़ बोला—

फेरुः स्वाहोढभर्तारं हित्वोपपति मिच्छसि ।
भ्रष्टापत्युश्च जाराच्च नग्निके किं निरीक्षसे ॥ १ ॥

अर्थात् ब्याहे हुए पतिको त्यागकर उपपति (जार)की इच्छा करती है? और अब मूल पति तथा 'उपमति' जारसे भ्रष्ट होकर हे नग्निके! तू क्या! देख रही है? । यह सुनकर वह अकेली राजपत्नी भयसे काँपने लगी, व्यन्तरदेवने अपना असली रूप धारण करके उसे अपनी समृद्धि दिखाई और बोला-हे पापे! तूने आज तक बड़े घोर पाप किये हैं अब इस पापरूप कीचड़को धोनेके लिए निर्मल जलके समान जिनधर्मको ग्रहण कर, मैं वही तेरा जार हाथीवान हूँ, मुझे दुर्गतिमें भेजनेके लिए तूने कुछ कसर नहीं की मगर जिनधर्मके प्रभावसे मैं इस दरजे-पर पहुँचा हूँ । तूने जैसे कर्म किये हैं इन कर्मोंके अनुसार सिवाय नरकके तुझे अन्य कोई गति प्राप्त नहीं होसकती । यदि दुर्गतिसे वचना चाहती है? तो सर्वोपरि जिनधर्मकी सेवा कर क्योंकि घोराति घोर पाप करनेवाले हजारोंही प्राणी जिनेश्वरदेवके धर्मकी आराधनासे स्वर्ग तथा अपवर्गके अतिथि वने हैं । यह सुनकर 'राजपत्नी' ने अपने कुत्सित कर्मोंकी ओर कुछ अनादरकी दृष्टीसे देखा और उसके मनमें कुछ घृणा भी उत्पन्न हुई । अत एव वह हाथ जोड़कर बोली-मुझे अपने कुत्सित कर्मोंपे बड़ी घृणा आती है, अबसे लेकर मैं सदैव आर्हद्धर्मकी सेवा करूँगी, मगर मुझे कहीं ठिकानेपर पहूँचा दो । 'व्यन्तरदेव' ने उसे किसी साध्वीके पास पहूँचा दिया, उसने भी साध्वीके पास जाकर जैनमतकी दीक्षा ग्रहण करली ।

इस लिए हे स्वामीन्! संसारमें प्रवर्तक और निवर्तक इस प्रकारके बहुतसे दृष्टान्त हैं आप उस तरफ दृष्टी न देकर संसारके सुखोंका अनुभव करो । 'जंबूकुमार' बोला-प्रिये! 'विद्युन्माली' के समान मैं विषय लोलपी नहीं हूँ ।

॥ नवमाँ परिच्छेद ॥

मेघरथ और विद्युन्माली.

भरतक्षेत्रके मध्य भागमें 'वैताढ्य' नामका एक पर्वत है उस पर्वतके उत्तर और दक्षिण इन दो श्रेणियोंमें विद्याधर लोग रहते हैं, उत्तर श्रेणीमें देवताओंको भी बड़ा वल्लभ ऐसा 'गगनवल्लभ' नामका विद्याधरोंका एक बड़ा विशाल नगर है। उस नगरमें परस्पर स्नेहवाले और दोनों सगे भाई 'मेघरथ' और 'विद्युन्माली' नामके दो विद्याधरके लड़के रहते थे। एक दिन उन दोनोंने विचार किया कि चलो भाई अपने दोनो जने भरतक्षेत्रमें जाकर अपनी विद्या सिद्ध करें। विद्या सिद्ध करनेका विधि यह था, भरतक्षेत्रमें जाकर अति नीच कुलमें पैदा हुई कन्याओंसे विवाह करके एक वर्ष परियन्त ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करे तब विद्या सिद्ध होसकती थी। 'मेघरथ' और 'विद्युन्माली' दोनों भाई गुरुकी आज्ञा लेकर भरतक्षेत्रमें 'वसन्तपुर' नामा नगरमें आये। 'वसन्तपुर' नगरमें आकर उन दोनोंने चाण्डालका वेष धारण कर

लिया और चाण्डालोंके मुहल्लेमें जाकर एक चाण्डालकी सेवा करने लगे, जब बहुतसे दिन सेवा करते होगये तब 'चाण्डाल' बोला–क्यों भाई! तुम कहांसे आये हो? और मेरी सेवा क्यों करते हो? 'मेघरथ' अपने सद्भावको गोपकर बोला–पिताजी! हम दोनों चाण्डालके लड़के हैं, 'क्षितिप्रतिष्ठान' नामा नगरके रहनेवाले हैं। एक दिन हमारे घरमें हमारे निमित्तसे क्लेश होगया था हमारे मातापिताओंने इस लिए हमें घरसे बाहर निकाल दिया, हम भी फिर अपने घरपर न गये, देश विदेश भ्रमण करते हुए यहां आये हैं अब आपकी सेवामें हम रहना चाहते हैं।

'चाण्डाल' उनके गुण तथा रूपलावण्यको देखके मुग्ध होगया, अत एव वह बोला—भाई! मेरे दो पुत्री हैं, मैं उनके साथ तुम्हारा विवाह कर देता हूँ और तुम यहां रहकर आनन्दसे समय व्यतीत करो। 'चाण्डाल' ने अच्छा दिन देखके दोनों पुत्रियोंका उन दोनों भाइयोंके साथ विवाह कर दिया, उन दोनों नवोढाओंमें जो 'मेघरथ' को व्याही थी वह काणी थी और जो 'विद्युन्माली' को व्याही थी वह दन्तुरा थी अर्थात् उसके दाँत होठोंसे बाहर निकले हुए थे। 'विद्युन्माली' अपने लक्षसे भ्रष्ट होकर उस कुरूपा चाण्डालकी पुत्रीपर रागवान होगया और विद्यासिद्धिको भूलकर उस कुरूपा दन्तुराके साथ विषय लोलुपी होकर अपने ब्रह्मचर्य अमुल्य रत्नको खोबैठा। थोड़ेही दिनोंके बाद 'विद्युन्माली' की पत्नी 'दन्तुरा' गर्भवती होगई। इधर विद्या सिद्ध होजानेपर 'मेघरथ' अपने भाई 'विद्युन्माली' से बोला–भाई! अब अपनी विद्या सिद्ध होगई, चलो अब वैताढ्य पर्वतपर अपने नगरको चलें। 'मेघरथ' को यह खबर न थी कि मेरा भाई मूर्ख मनुष्यके समान इस कुरूपा 'चाण्डाली' पर मोहित

होकर अपने व्रतको खंडित कर देगा । परन्तु जिस मनुष्यके भाग्यमें काचका टुकड़ा लिखा है उसे कभी भी चिन्तामणी रत्नकी प्राप्ति नहीं होसकती । 'विद्युन्माली' मुँह उदास करके 'मेघरथ' से बोला–भाई! आपकी विद्या सिद्ध होगई है, आप खुशीसे वैताढ्य पर्वतको पधारो, मेरी अभीतक विद्या सिद्ध नहीं हुई क्योंकि ब्रह्मचर्यरूप वृक्षको मैंने प्रमादमें आकर उखेड़ डाला। फिर उससे प्राप्त होनेवाला विद्या सिद्धिरूप फल कहांसे होवे? और इस हालतमें वैताढ्य पर्वतपर जाकर बन्धु वर्गको मैं क्या मुँह दिखाऊँगा? आप तो कृत कृत्य होगये हैं मैंने तो अपने आत्माको अपने आपही ठगा लिया । अब इस दशामें इस गर्भवती पत्नीको भी त्यागना अनुचित है । आपका कल्याण हो, आप वैताढ्य पर्वतको पधारो और अब मैं भी एक वर्षतक ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करके विद्याकी साधना करूँगा, अब मैं बिलकुल जरा भी प्रमाद न करूँगा । 'मेघरथ' अपने छोटे भाईकी यह दशा देखकर बड़ा विस्मित हुआ और उसे उपदेश गर्भित वचन कहकर अकेलाही वैताढ्य पर्वतको चला गया । 'मेघरथ' जब अपने घर जा पहुँचा तब उसे अकेला देखकर उसके स्वजनोंने उसको पूछा कि भाई तुम अकेले क्यों? 'विद्युन्माली' को कहां छोड़ा? । इस प्रकार पूछनेपर 'मेघरथ' ने 'विद्युन्माली' का वृत्तान्त स्वजनोंको कह सुनाया । इधर 'मेघरथ' के चला जानेपर 'विद्युन्माली' की पत्नीके पुत्र पैदा हुआ । आजतक तो 'विद्युन्माली' उस कुरूपा चाण्डालीके प्रेमबंधनसे बँधा हुआ था मगर अब पुत्रके भी प्रेमबंधनसे जकड़ा गया और पुत्रका मुँह देखकर अत्यन्त सुख मनाता है, विद्या सिद्ध करना तथा विद्याधर संबंधि सुखोंका अनुभव और वैताढ्य पर्वतकी नन्दन-

वनके समान मनोहारिणी विहारभूमि, इन सब वस्तुओंको उसने ऐसा भूला दिया जैसे मनुष्य खराब स्वप्नको भूला देता है। जैसे वराह (सूवर) रातदिन गंदकीमें मस्त रहता है वैसेही 'विद्युन्माली' भी विषयरूप गंदकीमें मस्त होकर अपने अमूल्य समयको नष्ट करता है। कुछ दिनोंके बाद 'विद्युन्माली' की स्त्रीको दूसरा गर्भ होगया। इधर विद्यासंपन्न 'मेघरथ' भाईके विरहसे बड़ी मुस्किलसे एक वर्ष व्यतीत होजानेपर विचारने लगा, अहो! मैं तो देवांगनाओंके समान रूपवाली विद्याधर पुत्रियोंके साथ गार्हस्थ्य सुखका अनुभव कर रहा हूँ और मेरा भाई इन सुखोंसे वंचित होकर 'सूवर' के समान अपने जीवनको बिता रहा है, मैं सात मँजलके महलोंमें रहकर अनेक प्रकारके भोजनोंका स्वाद लेता हूँ, वह बिचारा श्मशान भूमिके समान उस टूटे हुए झोंपडेमें सूके हुए टुकडे खाकर गुजारा करता है, यह विचारके 'मेघरथ' भरतक्षेत्रमें फिर वसन्तपुर नगरमें आया और अपने भाईकी दशा देखकर मनमें बड़ा खेद मनाने लगा। 'मेघरथ' बोला—भाई! इस दुःखमय जंजालको छोड़के वैताढ्य पर्वतपर चलकर विद्याधर संबंधि सुख और ऐश्वर्यका अनुभव क्यों नहीं करता?। 'विद्युन्माली' शर्मिन्दासा होकर और नीची गरदन करके बोला—भाई मैं क्या करूँ? इस बिचारी बालक पुत्रवाली और गर्भवतीको निराधार छोड़नेके लिए मैं असमर्थ हूँ, इसलिए हे भाई! आप कृपा करके मुझे अपना समय यहांही व्यतीत करने दो, आप वैताढ्य पर्वतपर पधारो और कभी समयान्तरमें कृपा करके मुझ अभागीको दर्शन देना।

'विद्युन्माली' के ऐसे बचन सुनकर 'मेघरथ' अपने मनमें बड़ा दुःखित हुआ और उसे लेजानेके लिए अनेक प्रका-

रके दृष्टान्त देकर बोध करने लगा, परन्तु जैसे मूसलधार मेघके वर्षनेपर काले 'पत्थर' के अन्दर एक भी पानीका बिन्दू नहीं जाता वैसेही 'मेघरथ' का उपदेश भी 'विद्युन्माली' को असर न कर सका। अन्तमें 'मेघरथ' 'विद्युन्माली' को लेजानेको असमर्थ होकर अपने स्थानको चला गया। इधर 'विद्युन्माली' दूसरी संतान होनेपर चाण्डालके कुलको स्वर्गके समान मानने लगा। चाण्डाल कुलमें 'विद्युन्माली' को वस्त्र, भोजनादिकी भी बड़ी तंगी रहती थी मगर वह विषय लोलुपी उस दुःखको भी सुखके समान समझता था। जब कभी वे दोनों पुत्र उसकी गोदमें खेलते हुवे मूत देते थे तब वह उस मूतको गंगाजलके समान समझकर खुशी मनाया करता था, 'विद्युन्माली' विषयासक्त होकर उस 'चाण्डाली' की कदर्थनायें भी ऐसी सहन करता था कि जो कानोंसे सुनी भी न जायें। कुछ समय व्यतीत होनेपर भाईके स्नेहसे 'मेघरथ' फिर 'वसन्तपुर' नगरमें आया, भाईकी दुर्दशा देखके 'मेघरथ' की आँखोंमें पानी भर आया, गद्गद स्वरसे 'मेघरथ' 'विद्युन्माली' से बोला—भाई! इस निन्दनीय चाण्डाल कुलमें रहकर अपने निर्मल कुलको क्यों कलंकित करता है? क्या कभी मानसरोवरमें पैदा हुआ राजहंस कीचड़वाले पानीमें क्रीडा करता है? अरे भाई! तू कुलीन होकर अपने कुलको दाग मत लगा और इस निन्दनीय कर्मको त्यागके मेरे साथ चल मैं तुझे पिताका आधा राज्य दूँ और देवांगनाओंके समान विद्याधरकी पुत्रियोंके साथ पानीग्रहण करके संसारके सुखोंका अनुभव कराऊँगा। 'मेघरथ' ने विद्युन्मालीको बहुतही समझाया मगर उस विषयासक्त जड़बुद्धिके एक भी बात ध्यानमें न आई। 'मेघरथ' लाचार होकर अपने घर चला गया और अपने

पिताकी साम्राज्य लक्ष्मीको चिरकाल भोगकर अन्तमें अपने पुत्रको राजगद्दी देकर 'मेघरथ' ने सुस्थिताचार्य महाराजके पास दीक्षा ग्रहण कर ली। 'मेघरथ' घोर तपस्या करता हुआ निर-तिचार चारित्र पालकर देवलोकमें देवांगनाओंका अतिथि हुआ। 'मेघरथ' इस प्रकार सुखकी परंपराओंको प्राप्त हुआ और विषयासक्त होकर बिचारा 'विद्युन्माली' संसारसागरमें गोते खाता हुआ अनेक प्रकारके दुःखोंको प्राप्त हुआ। इसलिए हे प्रिये! मैं उस 'विद्युन्माली' के समान विषयान्ध नहीं हूँ, जो तुमारे पेचमें आजाऊँ। मैं तो 'मेघरथ' के समान उत्तरोत्तर सुखोंका लंपट हूँ परन्तु जिसको तुम सुख मानती हो वास्तवमें यह सुख नहीं बल्कि सर्व दुःखोंका मूल कारणही यह है।

'कनकसेना' बोली—स्वामिन्! जरा विचार करो एकान्त पकड़के अति हठ करना यह सर्वथा अनुचित है, नीतिवालोंका भी यह कथन है कि—अति सर्वत्र वर्जयेत्। अति करनेवाला मनुष्य कभी भी कृत कार्य नहीं होता बल्कि 'शंखधमक' के समान दुःखको प्राप्त होता है।

॥ दशवाँ परिच्छेद ॥

शंखधमक, वानर और शिद्धि बुद्धि.

'शालीगाँव' में एक 'कृषक' (किसान) रहता था, उस 'कृषक' ने अपने क्षेत्रमें लकड़ियोंका एक टाँड बना रक्खा था, उस 'टाँड' पर बैठके वह दिन छिपेसे लेकर प्रातःकाल तक अपने खेतकी रक्षा किया करता था. जब रातको उसके कानमें जराभी भनक पड़ती तबही वह जोरसे शंख बजाने लगता, उसके शंखके शब्दसे दूर तकके जानवर डरकर भाग जाते। एक दिन एक चोरोंका टोला किसी एक गाँवसे बहुतसी गायें चुराके उसके खेतके समीपसे जा रहे थे। 'कृषक' के कानमें कुछ भनक पड़ी, अत एव उसने शीघ्रही अपना शंख फूँका, शंखका शब्द सुनकर उन चोरोंके दिलमें यह शंका पड़ गई कि जहांसे हम इन गायोंको चुराकर लाये हैं उस गाँववाले लोग हमारे पीछे आ पहुँचे। इस शंकासे वे चोर उन गायोंको छोड़कर अपनी जान बचाके ऐसे भागे जैसे प्रातःकाल होनेपर वृक्षोंको छोड़कर चारों दिशाओंमें पक्षीगण भाग जाते हैं। गायें सारी रातभर वहांही

चरती रहीं, जब पौ फटनेका समय हुआ तब धीरे धीरे चरती हुई सारीही गायें उस 'कृषक' के खेतमें आ बड़ीं, जब 'कृषक' उन गायोंको अपने खेतसे निकालने लगा तब वहांपर देखनेसे कोसों तक भी कोई मनुष्य न देख पड़ा। अत एव उसने सोचा कि निःसंदेह इन गायोंको कोई चोर मेरे 'शंख' के शब्दके भयसेही छोड़ गये हैं। उन गायोंको लेकर 'कृषक' अपने गाँवमें गया और सब 'किसानों' को बुलाकर कहने लगा देखो भाइयो! मेरे ऊपर एक देवता प्रसन्न हुआ है और उसने मुझे ये गायें दी हैं, मैं इन गायोंको तुम्हें समर्पण करता हूँ। यह कहकर उस 'कृषक' ने वे गायें गाँववालोंको देदीं। गाँववालोंने 'कृषक' की बात सत्यही समझी, इस लिए वे उस दिनसे 'कृषक' को गाँवके यक्षके समान मानने लगे और गाँवके सब लोग उसकी सेवाभक्ति करने लगे। 'कृषक' भी उस दिनसे लोभमें आकर अपने खेतमें जाकर रातभर 'शंख' बजाने लगा, दैवयोग एक दिन फिर वेही चोर पूर्ववत किसी एक गाँवसे गायें चुराकर उसी रास्तेसे आरहे थे, 'कृषक' के शंखका शब्द सुनकर परस्पर विचारने लगे कि इस शंखका शब्द पहले भी यहांही सुना था और आज भी यह शंख यहांही बज रहा है, इस लिए इससे यह मालूम होता कि यहां कोई खेत होगा और उस खेतका रखवाला यह शंख बजाता है, हम पहले नाहकही ठगे गये जो इस शंखके शब्दके भयसे इतनी सारी गायें छोड़के भाग गये। यह विचारके पश्चात्तापपूर्वक हाथ घसने लगे, वे सबके सब चोर ईंट पत्थर उठाकर शंखके शब्दके अनुसार चल पड़े, थोड़ी देरमें 'कृषक' के खेतमें जापहुँचे और टाँडपर बैठे हुए उस शंख बजानेवाले 'कृषक' को देखा।

चोरोंने क्रुधित होकर उसके मंचे (टाँड) को तोड़ डाला, 'टाँड' के टूट जानेपर वह 'कृषक' भी बिचारा निराधार होकर जमीनपर गिर पड़ा, चोरोंने ईंट पत्थरसे खूब उसकी वैय्यावच्च की अर्थात् चोरोंने यष्टी मुष्टीसे उस 'कृषक' को खूब मारा और अधमरा समझके उसके हाथ पाँव बाँधकर गेर दिया। चोरोंने उसके तनसे सब कपड़े उतारके उसे बिलकुल नंगा कर दिया । दैव-योग उस दिन रातको वे गायें भी उसके खेतके समीपही थीं, अत एव उन चोरोंने अपने गये हुये गोधनको प्राप्त करके अपना रास्ता पकड़ा । प्रातःकाल सूर्यका उदय होनेपर गाँवके ग्वाले वहांपर आये और उस 'कृषक' की दुर्दशा देखके साश्चर्य पूछने लगे—क्यों भाई ! आज क्या कोई देवता रूष्टमान हुआ है ? तुमारी यह दशा क्यों ? 'कृषक' बोला—

धमेद्धमेन्नाति धमेदति ध्मातं न शोभते ।
ध्मातेनो पार्जितं यत्तदति ध्मातेन हारितं ॥ १ ॥

अर्थात् मैंने जो कुछ शंख बजानेसे उपार्जन किया था वह सबही अत्यन्त बजानेसे हार दिया और इस दशाको प्राप्त हुआ हूँ । इसलिए स्वामिनाथ ! आप भी उस 'कृषक' के समान अ-तिशय करते हो मगर इस अतिशयका फल वह होगा जो उस 'कृषक' को हुआ ।

अमृतके समान मीठे वचनोंसे धीर मनवाला 'जंबूकुमार' बोला—प्रिये ! 'शैलेयवानर' के समान मैं बंधनोंसे अनभिज्ञ नहीं हूँ । यथा विन्ध्याचलकी एक कंदरामें एक बड़ा भारी 'वानर' रहता था । उस वानरने बड़े बड़े सबही वानरोंको वहांसे दूर भगा दिया था क्योंकि वह सबसे बलवान था, इसलिए जो कोई भी 'वानर' उसके सामने होता वह उसकाही नाक–कान काट

लेता, अत एव उसके भयसे सबही वानर उस स्थानको छोड़कर अन्य स्थानपर भाग गये । पीछे वह सबही वानरियोंका स्वामी बन बैठा। अब निःशंक होकर वह 'वानरराज' उन सब वानरियोंके साथ यथेच्छ क्रीड़ा करता हुआ अपने समयको आनन्दसे निर्गमन करता है । इस प्रकार समय बिताते हुए उस वानरकी युवावस्था व्यतीत होजानेपर तृष्णाको बढ़ानेवाली और शरीरको निःसत्त्व करनेवाली वृद्धावस्था आगई । एक दिन उस वानरियोंके टोलेमें एक युवा 'वानर' कहींसे आघुसा, उस वानरको देखकर वे सबही युवा वानरियाँ उसके ऊपर रागवाली होगई । वह वानर भी उनके ऊपर स्नेह प्रगट करके पके हुए दाड़म (अनार) के समान उनका मुँह चूँबने लगा और किसीके गलेमें केतकीके पुष्पोंका हार बनाकर डालता है, किसीकी अँगुलीमें विचित्र प्रकारके घासकी अंगुठी बनाकर पहनाता है और किसीके साथ स्वेच्छापूर्वक आलिंगन करता है. उन वानरियोंके पति उस बुड्ढे वानरको कुछ भी न गिनकर जब वह युवा 'वानर' इस प्रकार क्रीड़ा करने लगा तब वानरियाँ भी उसे अपना स्वामी समझके कोई तो कदलीके पत्रसे उसे पंखा करने लगी, कोई कमलोंका मुकुट बनाकर उसके सिरपर रखती है और कोई प्रेममें आकर अपने नखोंसे उसके बालोंको ठीक करती है । इनकी यह सब चेष्टा पर्वतके शिखरपर चढ़े हुए उस बुड्ढे 'वानर' ने देखी और देखतेही क्रोधसे अग्निके समान मुख लाल कर पूँछको ऊँची उठाके उस 'वानर' के सामने दौड़ा। मगर वह मदोन्मत्त युवा 'वानर' उससे कब डरता था, इस लिए वह भी क्रोधसे घुरघुरा कर उसके सामनेही आया । परस्पर दोनों वानर ऐसे लड़ने लगे जैसे कोई अखाड़ेमें दो मल्ल कुस्ती लड़ते हों । युद्ध

करते हुए उन दोनोंके त्रटत्रट दाँत और चटचट नख बजते थे, नख और दाँतोंके आघातसे जो रुधिर निकला उससे और भी अधिक उनके मुख लाल रँगे गये । युवा 'वानर' ने उस बुड्ढे 'वानर' को बिलकुल निःसत्त्व कर दिया, अब वह बिचारा अपनी जान बचाकर भागनाही चाहता था कि इतनेमेंही उस युवा 'वानर' ने पासमें पड़ा हुआ एक पत्थर उठाकर उसके सिरमें मारा, पत्थर लगतेही उस बुड्ढे 'वानर' को चकरी आगई । पत्थरके प्रहारकी दुःसह्य वेदनाको सहन करता हुआ अपने प्राणोंको लेकर बिचारा वहांसे भाग निकला, एक प्रहारोंकी वेदना और दूसरे पानीकी प्यास इन दोनोंसे उसका चित्त बहुत घभराया हुआ था। पानीकी तलासमें बहुत फिरा मगर कहीं भी पानीका पता न लगा, इसलिए बिचारा दीन होकर पहाड़में परिभ्रमण कर रहा था, इतनेमेंही उसने एक शिलासे झरता हुआ 'शिलाजतु' (शिलाजीत' देखा । 'शिलाजीत' को देखकर वह पानीकी इच्छासे उसकी तरफ चला और वहां जाकर पानीकी भ्रान्तिसे उस 'शिलाजीत' में अपना मुँह देदिया । 'शिलाजीत' में मुँह लगतेही ऐसा चिपक गया कि छुटानेके लिए बहुतही प्रयत्न किया गया मगर वहांसे जरा भी न हिला, मुँहको निकालनेके लिए उसने अपने दोनों हाथ भी डाले मगर हाथ भी पूर्ववत मुँहके समानही चिपक गये । अब वह बिचारा लाचार होकर घभराया और मुँह हाथ छुटानेके लिए उसने अपने दोनों पाँव भी डाल दिये, इस प्रकार पाँचोंही अंग 'शिलाजीत' से बँध जानेपर विचारा खराब मृत्युसे मरके दुर्गतिको प्राप्त हुआ । जैसे 'वानर' 'शिलाजीत' के स्वभावको न जानकर पानीकी भ्रांतिसे अपने पाँचोंही अंग उसमें डालके खराब मृत्युको प्राप्त हुआ, वैसेही शिलाजीतके स-

मान स्वभाववाली स्त्रियोंके सुखकी इच्छा करके मैं दुर्गतिका भागी बनना नहीं चाहता ।

'नभःसेना' हाथ जोड़कर बोली स्वामिन्! आप अधिक सुखकी इच्छासे 'सिद्धि और बुद्धि' नामा वृद्धाओंके समान पश्चात्तापको प्राप्त होवोगे । जैसे किसी एक गाँवमें 'बुद्धि' तथा 'सिद्धि' ये दो नामवाली बुढिया रहती थीं, उन दोनोंका परस्पर बड़ा स्नेह था परन्तु दोनों बहुत गरीब हालतमें थीं, उसी नगरके बाहर सेवक लोगोंकी कामनायें पूर्ण करनेवाला 'भोलक' नामका एक यक्ष रहता था । 'बुद्धि' उस यक्षकी आराधना करने लगी, प्रतिदिन प्रातःकाल वहां जाकर उसके 'मठ' को साफ करती है और अच्छे निर्मल पानीसे छिड़काव करके नैवेद्य वगैरह पूजाकी सामग्रीसे उसकी पूजा करती है । 'बुद्धि' को इस प्रकार यक्षकी आराधना करते बहुतसे दिन बीत गये, उसकी सच्ची सेवासे प्रसन्न होकर एक दिन 'भोलक' यक्ष उसे प्रत्यक्ष हुआ और कहने लगा 'बुद्धि' जो तेरी इच्छा हो सो माँग ले मैं तेरी सेवासे प्रसन्न हूँ । 'बुद्धि' बोली–महाराज यदि आप संतुष्ट हैं तो मैं इतनाही माँगती हूँ मेरी स्थिति बहुत साधारण है, किसी दिन तो पेटभर रोटी भी नहीं मिलती, अब आपकी कृपासे मेरा गुजारा अच्छी तरह होवे मैं इतनाही चाहती हूँ । यक्षराज बोले–अच्छा तेरा गुजारा अच्छी तरह चलेगा, मेरे मठके पीछे प्रातःकाल आकर तूने हमेशा खोदना वहांसे तुझे प्रतिदिन एक सुवर्णकी मुहोर मिला करेगी, उससे तेरा निर्वाह बड़ी अच्छी तरहसे होजायगा । 'बुद्धि' वैसाही करने लगी, उससे प्रतिदिन यक्षके कहे मुजब एक सुवर्णकी मुहोर मिलने लगी। प्रथम तो पेटभर रोटियें भी नहीं मिलती थीं मगर रोजकी रोज सुवर्णकी मुहोर

मिलनेपर अब 'बुद्धि' के घर सदैव हलवा, पूरी उड़ने लगा और जिन वस्त्रोंको बुद्धिने कभी स्वप्नमें भी न देखा था वे वस्त्र पहने जाते हैं, यह हालत देखके पासमें रहनेवाले पड़ौसी भी विस्मित होकर विचारने लगे क्या कोई इस बुढियाको कहींसे खजाना मिल गया है? या कहींसे इसे कुछ धन पाया है? । इस प्रकार घनेही संकल्प विकल्प किये परन्तु किसीको कुछ भी पता न लगा ।

'बुद्धि' अब पहलेसी नहीं है अब तो उसके घरमें दश बीस दास-दासियें भी कामकाज करनेवाले रहते हैं । 'बुद्धि' जिस टूटे हुए झोपड़ेमें प्रथम रहती थी उस झोपड़ेको छोड़कर उसने बड़ा विशाल और मनोहर एक महल चिनवाया, उस महलमेंही 'बुद्धि'का रहना सहना होता है। अब 'बुद्धि' की सेवामें कै तो दास-दासी उपस्थित रहते हैं और उसकी पासाक भी प्रतिदिन नयीही बदली जाती है । यही नहीं था कि 'बुद्धि' उस यक्षराजके दिये हुए वित्तसे अपनाही पेट भरती थी बल्कि आये गये अतिथियोंका भी सत्कार भली प्रकारसे करती थी और अर्थी जनोंको उचित दान भी देती थी । 'बुद्धि' की इस ऐश्वर्यताको देखके उसकी सखी 'सिद्धि' के मनमें बड़ी ईर्षा पैदा होती थी। मगर उसकी कुछ पार न बसाती थी । 'सिद्धि' के मनमें ईर्षा पैदा होनेका कारण यही था कि उसके दिलमें यह विचार आता था हम दोनों एक सरीखीही थीं, थोड़ेही दीनोंमें उसके यहां अतुल खजाना कहांसे आया और मेरी तो वहांकी वही दशा है । यदि रोटी प्राप्त होती है तो शाक नहीं और शाक है तो रोटी नहीं । यह विचार करके हमेशा अपने हृदयमें झुरती रहती थी। (सज्जनो! इसी ईर्षासे आज अपने पवित्र भारतकी यह दशा होरही है मगर जो मनुष्य जिस किसीकी समृद्धि अथवा जिस

किसी महात्माके गुणोंको देखकर ईर्षा करते हैं, उनके पास जो कुछ समृद्धि अथवा जो कुछ उनमें गुण हैं, वे लोग उनसे भी हाथ धोकर बैठ जाते हैं। संसारमें मनुष्योंको संपदायें और सद्गुण ये पुन्यके प्रभावसे प्राप्त होते हैं। जिस मनुष्यको इन वस्तुओंकी इच्छा हो उसको चाहिये कि वह पुण्योपार्जन करनेकी चेष्टायें करे, जिससे उसे भी वे वस्तु प्राप्त होवें, ईर्षा और द्वेष करनेसे अपना आत्मा महा मलीन होता है और प्राप्ति कुछ भी नहीं।) 'सिद्धि' बुद्धिकी संपदाका भेदभाव निकालनेके लिए उसके घरपे गई और बड़े मीष्ट वचनोंसे 'बुद्धि' से बोली—बहिन! आज तक मेरा और तेरा बड़ाही गाढ संबंध है और सखिपनेसे मैं तेरी बड़ी विश्वासपात्र हूँ, इसलिए मुझे तेरेसे और तुझे मेरेसे कोई अकथनीय बात अथवा गोप्य वस्तु नहीं, इसी कारणसे आजतक परस्पर प्रीति रही है और आगेको रहेगी, इस लिए तू मुझे यह तो बता कि अकस्मात इतना धन तेरे घरमें कहांसे आया? तुझे कोई चिन्तामणी रत्न प्राप्त हुआ है? या तेरे ऊपर राजाकी कृपा दृष्टी हुई है? या कोई देवता प्रसन्न हुआ है? या कहींसे दबा हुआ खजाना प्राप्त होगया? या किसी महात्माने तुझे रसायण सिद्धि बताई है? क्योंकि थोड़ेही दिन पहले जो कुछ मेरी हालत है वह तेरी भी थी। एकदम वैभव प्राप्त होनेका कारण कुछ न कुछ तो अवश्यही होना चाहिये और मुझे तो इस बनावको देखके अत्यन्त खुशी हुई है क्योंकि जब तुझे वैभवकी प्राप्ति हुई तो मेरा तो दारिद्र गयाही समझो। इस प्रकार पूछनेपर 'बुद्धि' ने 'सिद्धि' के मनका भाव न समझकर उसे 'यक्ष' की आराधनासे लेकर धनकी प्राप्तितक सबही वृत्तान्त कह सुनाया। 'सिद्धि' ने 'बुद्धि' के वैभवकी प्राप्तिका कारण सुनकर विचारा

कि बड़ी अच्छी बात हुई, अब मुझे भी द्रव्य उपार्जन करनेका सरल उपाय मिल गया, अब मैं भी उस 'यक्षराज' की ऐसी आराधना करूँगी जो 'बुद्धि' ने भी न की हो और उस आराधनासे विशेष द्रव्य प्राप्त करूँगी । 'सिद्धि' को द्रव्य प्राप्तिके उपायकी जरूरत थी सो प्राप्त होही गया अब कहनाही क्या था । 'सिद्धि' 'यक्षराज' की सेवामें ऐसी तत्पर होगई कि उसने खानापीना भी भुला दिया । 'सिद्धि' ने प्रथम तो उस 'देवकुल' (यक्षमठ) को साफ कराके कलीचुनेसे नवीन जैसा करवाया, अब प्रातः-काल उठकर निर्मल पानीसे उसे स्नान कराती है पश्चात् अनेक प्रकारकी भक्तिसे धूपदीप फलफूलादिसे पूजा रचाकर अखंड चाव-लोंके स्वस्तिक (साथिये) करती है और एक एक दिनके अन्तरे उपवासकी तपस्या करती हुई 'यक्षनी' के समान उस मठमेंही वास करने लगी । जब बहुतसे दिन इस प्रकार आराधना करते हुए व्यतीत होगये तब एक दिन प्रत्यक्ष होकर 'भोलक' यक्ष 'सिद्धि' को कहने लगा–हे भद्रे! मैं तेरी इस भक्ति सेवासे बड़ा प्रसन्न हूँ, तुझे जिस वस्तुकी इच्छा हो वह माँग ले ।

'सिद्धि' हाथ जोड़कर बोली–यक्षराज! यदि आप मुझ-पर प्रसन्न हो तो मैं अपने आपको कृतार्थ समझती हूँ और मुझे आशा है कि आप मेरे इस दारिद्र दुःखको दूर करेंगे । मैं आपसे कुछ राज्यपाटकी इच्छा नहीं करती मगर जितना द्रव्य आपने 'बुद्धि' को दिया है उससे दूना मुझे मिलना चाहिये । 'यक्षराज' बोला–अच्छा जो कुछ मैंने 'बुद्धि' को दिया है उससे दूनाही तुझे मिला करेगा, यह कहकर 'यक्षराज' तो अदृश्य होगये । 'सिद्धि' प्रातःकाल उठकर यक्षके मंदिरमें जाती है वहांसे उसे प्रतिदिन दो २ सुवर्णकी मोहर मिलती हैं, उन मोहरोंको लेकर

खुशी होती हुई 'सिद्धि' अपने मकानपे चली आती है। थोड़ेही दिनोंमें क्रमसे 'सिद्धि' के यहां 'बुद्धि' से भी अधिक द्रव्य होगया। 'सिद्धि' को अधिक द्रव्यवाली देखके 'बुधिके मनमें भी अधिक धनका लोभ लगा, इस लिए उसने अपनी इच्छा पूर्ण करनेके लिए 'यक्ष' की आराधना फिरसे करनी शुरु की। यक्षराज फिर प्रसन्न होकर बोला—माँग भद्रे! क्या चाहिये?

'बुद्धि' बोली—जो कुछ आपने 'सिद्धि' को दिया है वही वस्तु उससे अधिक मुझे दो। 'यक्षराज' की तो जबानही हिलती थी, उसने कहा अच्छा आजसे एसाही होगा। इस बातकी खबर 'सिद्धि' को पड़ गई, उसके दिलमें 'बुद्धि' को देखकर बड़ीही ईर्षा पैदा होती थी। मगर उसकी कुछ भी पेश न चलती। 'सिद्धि' ने उस 'गोल्लक' यक्षकी आराधना फिरसे शुरु की और थोड़ेही दिनोंके बाद उसकी पूजासेवासे प्रसन्न होकर जब 'यक्षराज' ने उसे वर माँगनेका कहा तब 'सिद्धि' ने विचारा कि अब के कोई ऐसी चीज यक्षराजसे माँगू जो कदापि 'बुद्धि' उससे दूना माँगे तो उसका अपकारही होवे, यह विचारके 'सिद्धि' 'यक्षराज' को बोली—हे यक्षराज! यदि आप मुझपर प्रसन्न हो तो मैं आपसे इतनाही माँगती हूँ कि आप मेरी एक आँख फोड़ डालें, 'यक्षराज' ने भी वैसाही किया, उसके कहे मुजब उसे कानी कर दी।

'बुद्धि' को मालूम हुआ कि 'सिद्धि' ने यक्षराजकी फिरसे आराधना करके कुछ लिया है इस लिए उसने फिर तीसरी दफे यक्षराजकी आराधना की और जब उसकी आराधनासे 'यक्ष' प्रसन्न होकर वर देनेको बोला तब उसने यही माँगा कि जो कुछ आपने सिद्धिको दिया है मुझेभी वही उससे

दूना दो 'यक्ष' ने कहा—अच्छा भद्रे! तथास्तु यह कहकर 'यक्षराज' तो तिरोहित होगये, 'बुद्धि' की शीघ्रही दोनों आँखें नष्ट हो गई, क्योंकि देवताओंका वचन कभी व्यर्थ नहीं जाता। जिस प्रकार उस वृद्धा 'बुद्धि' ने प्रथम प्राप्त की हुई संपदासे न तृप्त होकर अति लोभमें तत्पर होकर अपने आपको नष्ट कर लिया था उसी तरह हे स्वामिन्! आप भी पूर्वकृत सुकृतके प्रभावसे प्राप्त की हुई संपदासे अतृप्त होकर अधिक सुख संपदाकी इच्छा करते हुए उसीके प्रतिरूप बनोगे।

'जंबूकुमार' बोला—प्रिये! मैं जातिमान् अश्वके समान उत्पथ (उन्मार्ग) गामी नहीं हूँ।

॥ ग्यारवाँ परिच्छेद ॥

जातिमान अश्व और मूर्ख लड़का.

यथाहि, वसन्तपुर नगरमें 'जितशत्रु' नामका राजा राज्यलक्ष्मीसे सुशोभित और नीतिको जाननेवाला अपनी प्रजाको भली प्रकार पालन करनेमें तत्पर रहता था। उसी नगरमें श्रावकाग्रणी 'जिनदास' नामका एक श्रेष्ठी रहता था। 'जिनदास' बड़ा दयाधर्मी, सुशील और न्यायवान था, इसलिए वह राजाका बड़ा विश्वासपात्र था। एक दिन किसी देशान्तरसे उस नगरमें बहुतसे घोड़े आये, राजाको मालूम हुआ कि किसी देशान्तरसे हमारे नगरमें घोड़े आये हैं, अत एव राजाने घोड़ोंके लक्षण जाननेवाले पुरुषोंको आज्ञा दी कि जाओ भाई परिक्षा करो, कौन कौनसे घोड़े किन किन लक्षणोंसे संयुक्त हैं। परिक्षक लोगोंने वहां जाकर सबही घोड़े देखे, मगर उन सब घोड़ोंमें एकही 'बछेरा' संपूर्ण लक्षणोंसे संयुक्त था, उस 'बछेरे' के शरीरमें एक लक्षण ऐसा भी था कि जिससे उसके स्वामिकी संपदा वृद्धिगत होती रहे। इस प्रकार शास्त्रोक्त अश्वलक्षणोंसे उपेत उस 'बछेरे' को देखके उन्होंने राजासे कहा—राजन्! शास्त्रमें लक्षण इस प्रकार कहे हैं—श्रेष्ठ

खुर गोल आकारवाले होने चाहिये, निर्मांस जानु (जंघा) होनी चाहिये, मुँह बड़ा पतला होना चाहिये, कंधरा ऊंची होनी चाहिये, काँन छोटे होने चाहिये, गरदनकी केशरायें लंबी होनी चाहियें, शरीरके रोम बहुत कोमल और चिकने होने चाहियें। इत्यादि जो शास्त्रोक्त लक्षण हैं उन सर्व लक्षणोंसे यह 'अश्व' संपन्न है, इतनाही नहीं बल्कि इसके शरीरमें एक लक्षण ऐसा प्रशस्त है कि जिसके प्रभावसे इसके स्वामिकी संपदा प्रतिदिन वृद्धिगत होगी। राजाको घोड़े खरीदनेका बड़ा सौख था, इस लिए वह स्वयंही घोड़ोंकी परिक्षामें बड़ा दक्ष था। राजाने बहुतसा द्रव्य देकर उस बछेरेको खरीद लिया और निर्मल जलसे स्नान कराके फलफूलादि पूजा की सर्व सामग्री मँगवाकर अपने हाथसे उसकी पूजा की। अब राजाके मनमें यह चिन्ता हुई कि इस अश्व, रत्नकी रक्षा कौन करेगा क्योंकि प्रायः 'अपाय बहुलानि रत्नानि भूतले' अर्थात् भूमितलमें ऐसी रत्न वस्तुयें बहुत कष्टयुक्त होती हैं, इस लिए इस रत्नकी रक्षा करनेवाला कोई ऐसा पुरुष होना चाहिये जो अपने प्राणोंसे भी अधिक इसकी रक्षा करे, इस प्रकार विचार करते हुवे राजाने सोचा। इस वक्त 'जिनदास' के समान विश्वासपात्र और कोई मुझे नहीं देख पड़ता, क्योंकि यह मेरा पूर्ण भक्त है और श्रावकोंमें भी यह अग्रणी और सदाचारी है, इस लिए ऐसे रत्नकी रक्षा करनेके योग्य 'जिनदास' सिवाय अन्य कोई नहीं नजर आता। यह विचारके राजाने 'जिनदास' श्रावकको बुलवाया और बड़ी प्रसन्नतापूर्वक उसको अपने पास बैठाके कहा कि जिनदास! मेरे आत्माके समान तूने हमेशा अप्रमत्त होकर इस 'बछेरे' की रक्षा करनी। 'जिनदास' हाथ जोड़के राजाकी आज्ञाको मस्तकपर चढ़ा बड़ी

धूमधामसे उसे अपने घरपर ले गया और ऐसे स्थानपे रक्खा जहां किसी भी प्रकारका भय नहीं । 'जिनदास' ने उस अश्वके रहनेकी जगह वालू रेता गेरके ऐसी तो कोमल बना दी कि मानो मखमलकी शय्याही न हो, अब प्रतिदिन जब आप स्नान करता है तब उस 'अश्व' को भी स्नान कराता है और अपने हाथसे हरित रिजकेकी पत्तियां खिलाता है । यह निरोगी है या नहीं अथवा इसे कोई रोग न होजाय इस चिन्तासे प्रतिदिन उसकी आँखोंकी पक्ष्मणी (पलक) उठा उठाकर देखता है और हमेशा उसपे चढ़कर नगरसे बाहर सरोवरमें उसे पानी पिला लाता है । 'जिनदास' जब उसपर चढ़कर उसे पानी पिलानेको लेजाता तब प्रथम धारासेही चलता था । नगर और सरोवरके मध्य भागमें एक बड़ा भारी जिनालय (जिनमंदिर) था उस जिनालयके पास होकरही सरोवरको रास्ता जाता था, इस लिए जिनेश्वर देवकी मुझसे अवज्ञा न हो यह विचारके 'जिनदास' उस अश्वपे चढ़ा हुआ आते और जाते समय उस जिनालयकी प्रदक्षिणा दिया करता था । घोड़ेसे उतरके इस लिए मंदिरमें नहीं प्रवेश करता था, उसके मनमें घोड़ेकी तरफसे बहुत फिकर रहता था ।

इस प्रकार सावधान होकर उस घोड़ेकी रक्षा करते हुए 'जिनदास' को कै वर्ष व्यतीत हो गये । ज्यों ज्यों वह घोड़ा वृद्धिको प्राप्त होता है त्यों त्यों राजाकी राज्यलक्ष्मी भी वृद्धिको प्राप्त होने लगी । थोड़ेही वर्षोंमें नतीजा यह निकला कि उस घोड़ेके प्रभावसे उस देशवासि सर्व राजाओंने उस राजाकी आज्ञा अपने मस्तकपर चढ़ाई । परन्तु किसीने खुशीसे और किसीने जबरदस्ती । जो राजा प्रथम इस राजाकी अपेक्षा अधिक सत्तावाले थे अब उन्हें

इस राजाकी आज्ञा मानते हुए दुःख होता है, परन्तु करें क्या पुन्यवानके सामने बलवान भी निर्बल होजाते हैं । दैवयोग उन राजाओंको यह मालूम हो गया कि इस घोड़ेके प्रभावसेही इस राजाकी राज्यलक्ष्मी बढ़ती जाती है और हम भी घोड़ेके प्रभावसे परास्त किये गयें हैं, जबतक यह घोड़ा इसके यहां रहेगा तब तक यह राजा सर्वोपरि राज्यलक्ष्मीको भोगेगा । जो राजा इस राजासे पहलेसेही विरोधी थे और जो इस वक्त उसकी संपदाको देखके ईर्षा करते थे, उन सबने मिलकर यह विचार किया कि इस घोड़ेका किसी तरह हरन करना चाहिये अथवा मरवा देना चाहिये । यदि ऐसा न किया जायगा तो यह राजा थोड़ेही समयमें सारी पृथ्वीका मालिक होजायगा । यह कार्य करनेके लिए कै आदमियोंको पूछा गया परन्तु किसी भी पुरुषकी इस दुस्कर कार्य करनेको छाती न ठुकी ।

एक बड़ा वाचाल और धूर्त शिरोमणी मंत्री था, वह यह बात सुनकर बोला—क्या इस कार्यको तुम लोग दुस्कर समझते हो लो मैं करुँगा इस कार्यको, पुरुषार्थसे क्या नहीं सिद्ध होता? पुरुषार्थकी अनन्त शक्ति है । देखो मैं थोड़ेही दिनोंमें इस अश्वको हरन कर लाता हूँ । यह कहकर वह मंत्री कपटसे श्रावकका वेष धारण करके 'वसन्तपुर' नगरमें आया और नगरके जिनमन्दिरोंमें नमस्कार करके साधुओंके पास उपाश्रयमें वन्दन करनेको गया, साधुओंको वन्दन करके पूछता पूछता जिनदास श्रेष्ठिके घरपर गया, जिनदासके घरपे एक छोटासा जिनालय था वहां जाकर वह कपटी श्रावक जिनप्रतिमाओंको नमस्कार करने लगा । 'जिनदास' उस परदेशी श्रावकको देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ । गृह जिनालयसे निकलकर उस दंभी

श्रावकने 'जिनदास' को देखके उचित प्रणाम किया, 'जिनदास' ने भी अपने साधर्मीको देखके आसनसे उठकर प्रीतिपूर्वक बड़ा सन्मान किया और मधुर वचनोंसे पूछा, महाशयजी आप कहांसे पधारे हैं ? । यह सुनकर वह कपट श्रावक बोला-इस असार संसारसे मुझे विरक्ति हुई है, इस लिए गार्हस्थ्य धर्मसे मुझे अरुचि प्राप्त हुई है, अब तीर्थ यात्रा करके किसी सुगुरुके पास थोड़ेही दिनोंमें दीक्षा ग्रहण करनी है । 'जिनदास' यह बात सुनके बड़ा आनन्दित हुआ और कहने लगा-भाई धन्य है आप जैसे महात्माओंको जो इस असार संसारके मोहबंधनको तोड़कर अपने आत्माका कल्याण करना चाहते हैं । उस मायी श्रावकको संसारसे वैराग्यवान समझके सरलाशयवाला 'जिनदास' उसकी अत्यन्त भक्ति करने लगा । गरम पानीसे उसे अपने बंधुके समान 'जिनदास' ने अपने हाथसे स्नान कराके उसके मस्तकपर केसरका तिलक किया, श्रेष्ठ सुगंधिवाले पुष्पोंकी माली उसके कंठमें डाली और अच्छी अच्छी इतर आदि सुगंध वस्तुओंसे वासित रेसमी वस्त्रकी पौसाक पहनाकर अपने साथही मखमलके आसनपे बैठाके उसे अनेक प्रकारकी श्रेष्ठ खाद्य वस्तुओंसे जिमाया । थोड़ेही परिचयसे 'जिनदास' को उसके ऊपर पूर्ण विश्वास और स्नेह होगया था, उसका कारण यह था, वह 'जिनदास' के साथ वार्तालाप करता हुआ संसारकी असारताही दिखलाता था और ऊपरसे डौल भी ऐसा दिखाता था जैसे कोई सचमुचही दीक्षा लेनेवाला हो । 'जिनदास' और वह बनावटी श्रावक परस्पर बातचीत कर रहे थे इतनेमेंही कोई एक 'जिनदास' का संबंधि आया और वह 'जिनदास' से कहने लगा-भाई ! कल मेरे घरपे महोत्सव है, इसलिए एक रातादिनके वास्ते आपको

मेरे यहां आना पड़ेगा, क्योंकि आप हरएक बातमें कुशल हैं और विधि विधानके भी जानकार हैं, इस लिए आपके आये विना कार्य ठीक नहीं होगा। 'जिनदास' ने उसका वचन स्वीकार करके उसे विसर्जन किया। प्रेमगर्भित वाणीसे 'जिनदास' उस मायावी श्रावकसे बोला—भाई! मुझे अवश्य इसके घरपे जाना पड़ेगा और यहां कोई घरकी रक्षा करनेवाला है नहीं, इसलिए भाई! आप मेरे घरपे रहना, मैं प्राय कल प्रातःकाल यहां आ जाऊँगा। कुछ मुस्कराके उस कपटी श्रावकने 'जिनदास' का कहा मंजूर कर लिया। सरलाशय विचारा 'जिनदास' उस धूर्तको अपने घरका रक्षक बनाके अपने संबंधियोंके महोत्सवमें जा स्यामिल हुआ। उस दिन रातको नगरमें कौमुदी महोत्सव था, इस लिए नगरवासि स्त्री–पुरुष उस रातको चंद्रमाके चाँदनेमें मस्त होकर नगरमें गाते नाचते फिरते थे। अवसरको पाके उस दुरात्मा कूट श्रावकने निःशंक होकर वहांसे उस घोड़ेको खोलके उसके ऊपर चढ़के उसे लेजाना चाहा। घोड़ा उस दुराशयकी एड लगतेही जिस रास्तेसे सरोवरपे पानी पीनेको जाया करता था, उसी रास्तेकी ओर चल पड़ा, उस धूर्तने बहुतही लगाम खींची मगर आजतक उस घोड़ेने सरोवरके सिवाय अन्य रास्ताही न देखा था। इस लिए वह इधर उधर न जाकर उसी मार्गसे रास्तेमें जिनेश्वर देवके मन्दिरको तीन प्रदक्षिणा देकर सीधा सरोवरपे जा खड़ा हुआ। उस धूर्त श्रावकने फिर उसे मारना कूटना शुरू किया। घोड़ा फिरसे उसी रास्तेसे पीछे भागा और पूर्ववत रास्तेके जिनालयको तीन प्रदक्षिणा देके अपने स्थानपर आ खड़ा हुआ। इस प्रकार रातभर उसी रास्तेमें चक्कर लगाता रहा परन्तु बहुतसे प्रयत्न करनेपर भी तथा उस धूर्तकी मार खानेपर

भी वह सुशील घोड़ा अपने मार्गसे विचलित न हुआ। जब इस प्रकार करते हुए रात व्यतीत होने लगी तब उस अश्वको अन्यत्र लेजानेके लिए असमर्थ होकर वहांही छोड़के वह दुरात्मा भाग गया। प्रातःकाल होनेपर संबंधियोंके महोत्सवमेंसे 'जिनदास' अपने घरको आरहा था, रास्तेमें उसने एक आदमीसे सुना कि आज सारी रातभर तुमारा घोड़ा कौमुदी महोत्सवमें फिराया गया है। 'जिनदास' इतनाही सुनकर चौंक पड़ा, संभ्रांत हो शीघ्रही अपने मकानपे आया और उस घोड़ेकी दुर्दशा देख तथा उस धूर्त श्रावकको न देखके मनमें बड़ा दुःखित हुआ और समझ गया कि उस धूर्तकाही यह दुस्कर्म है, उसने मुझे धर्मके बहानेसे ठग लिया, खैर मेरे दिन अच्छे थे जो घोड़ा बच गया, यह कह कर घोड़ेको प्रेमपूर्वक पुचकारा और उस दिनसे लेकर किसीका भी विश्वास न करके अपने प्राणोंसे भी अधिक उस अश्वकी रक्षा करने लगा। इस लिए हे भद्र! उस अश्वके समान मुझे भी कोई उन्मार्गमें लेजानेके लिए समर्थ नहीं है। परलोकमें सुख देनेवाले मार्गको मैं कभी न त्यागूंगा।

'कनकश्री' बोली—स्वामिन्! ग्रामकूटके मूर्ख लड़केके समान आप जड़बुद्धिवाले मत बनो, तथाहि किसी एक गाँवमें ग्रामकूट नामा एक कृषक रहता था, उसके एक लड़का था, कुछ दिनोंके बाद उस लड़केका पिता मरजानेपर वह बिलकुल स्वेच्छाचारी और हरामी होगया। उसकी माता बिचारी दुखी होकर दूसरोंके पीसने पीसकर भी उसका पेट भरती, मगर वह ऐसा निखट्टु था कभी भी एक पाई कमाकर नहीं लाता, जब उसका पेट भरजाता है तब अलमस्त होकर इधर उधर फिरता रहता है और जब रसोईका टाईम होता है तब फिरके घरपे आजाता है। एक दिन

॥ बारहवाँ परिच्छेद ॥

ब्राह्मणपुत्र और एक शकुनि.

किसी एक नगरमें एक जमीनदारके यहां एक बड़ी कीमती और सुन्दर घोड़ी थी, उस घोड़ीकी पालना वह जमीनदार अपनी पुत्रीसे भी अधिक करता था, उस घोड़ीकी सारसंभालके लिएही सोल्लक नामका एक नौकर भी रक्खा हुआ था, जब वह जमीनदार उस घोड़ीके लिए गुड़, घी आदि रातब उस सोल्लकको दिया करता तब 'सोल्लक' उसमेंसे थोड़ासा घोड़ीको देकर बाकी अपने घरपे लेजाता । इस प्रकार घने दिन बिताते हुए 'सोल्लक' ने ऐसा कर्म उपार्जन कर लिया । जिससे उसे भवान्तरमें उस घोड़ीके जीवका सेवक बनकर उसका हक अदा करना पड़े ।

'सोल्लक' अपनी आयुको पूर्णकरके उस वंचन कर्मके प्रभावसे काल करके चिरकालतक संसारमें तिर्यग्गतिमें परिभ्रमण करके 'क्षितिप्रतिष्ठान' नगरमें सोमदत्त ब्राह्मणकी भार्या सोमश्रीकी कुक्षिमें पुत्रपने आकर पैदा हुआ । इधर वह घोड़ी भी वहांसे काल धर्मको प्राप्त होकर अरण्यके मार्गमें मूढ आदमीके समान संसारमें परिभ्रमण करती हुई उसी क्षितिप्रतिष्ठान नगरमें 'कामपताका' वेश्याके पुत्रीपने पैदा हुई । 'कामपताका'

उस नगरमें अव्वल नंबरकी वेश्या गिनि जाती थी, इस लिए उसके घरपे राजकीय लोग तथा बड़े बड़े धनाढ्य पुरुषही आया करते थे, साधारण आदमीको तो वहांपर घुसना भी न मिलता था। 'कामपताका' की पुत्री क्रमसे योबनको प्राप्त हुई उसकी चढती जवानी तथा रुपलावण्यको देखकर राजाके लड़के तथा अन्य भी शेठ साहूकारोंके युवावस्थावाले लड़के उसपर आशिक होगये और रात्रिके समय मेवा मिष्टान लेकर उसके घरपे जाने लगे। इधर वह 'सोलुक' का जीव योबनको प्राप्त हुआ हुआ भिक्षावृत्तिसे अपना निर्वाह करता है। एक दिन उसने कहीं बाजारमें घूमती हुई उस वैश्या पुत्रीको देख लिया, उसे देखके उस ब्राह्मण पुत्रका मन उसके कबजेमें न रहा और ऐसा अत्यन्त आसक्त होगया कि रातदिन कुत्तेके समान उस वैश्याके घरके दरवाजेपर पड़ा रहता है। वेश्यापुत्री राजा अमात्यादि धनवानोंके पुत्रोंके साथ क्रीड़ा करती है, उस ब्राह्मणपुत्रकी ओर नजर भरके देखती भी नहीं, बल्कि उस ब्राह्मणपुत्रकी कटु वचनोंसे कदर्थना करती है। इस प्रकार कदर्थना करनेपर भी वह ब्राह्मणपुत्र उस वेश्या पुत्रीको देख देखकर जीता है। वेश्या उसे बहुतही तिरस्कारकी दृष्टीसे देखती है, तथापि वह मूढ उसके घरको स्वर्गागार सा समझकर वहांही पड़ा रहता है, उसके घरको छोड़नेमें असमर्थ होकर ब्राह्मणपुत्र उस वेश्याके पीकदान वगैरह साफ करने लगा और भी जो कुछ काम देखता है उसे विना कहे सुनेही कर लेता है। वेश्या उसे ताड़ना तर्जना करके अपने मकानसे निकालती है परन्तु वह मूढ दुसह्य तिरस्कारको भी सहन करता हुआ और भूख प्यासकी वेदनाको भी न गिनकर वहांही पड़ा रहता है। वेश्यापुत्रीने कई दफे तो अपने नोकरोंसे भी बुरा भला क-

हाया, मगर वह बन्दा ज्यूंसे त्यूं न हुआ । इसी तरहसे प्राय व-ड़वाके समान जो तुम हो तुमारे अन्दर रागवान होकर मैं उस मूढके समान नीच कर्म उपार्जन करना नहीं चाहता, इसलिए कल्पित युक्तियोंसे सरा, मैं अपने कार्यसे कभी भी विचलित न हूँगा ।

'कमलवती' कहने लगी—नाथ! मा साहस 'शकुनि' के समान आप इतना साहस मत करो । जैसे एक गाँवमें कोई एक आदमी रहता था । दुष्काल पड़नेपर वह बिचारा अपने स्वजन संबंधियोंको छोड़के अपना निर्वाह करनेके लिए किसी एक सार्थवाहके साथ परदेशको चल पड़ा । जब बहुतसी दूर सार्थ चला गया तब एक महा अटवी आगई । सार्थने उस अटवीमें पड़ाव डाल दिया और सब अपने अपने खाने पीनेके लिए बं-दोबस्त करने लगे । वह आदमी भी जंगलमें लकड़ियां लेनेको निकल पड़ा जो उस सार्थके साथ आया था ।

जंगलमें जाकर उसने एक व्याघ्रको मुँह फाड़कर सोते हुए देखा, उस व्याघ्रकी दाढाओंमें कुछ मांसका अंश लगा हुआ था । पासमेंही एक वृक्षके ऊपर एक 'शकुनि' पक्षी बैठा था, 'शकुनि' पक्षी सोते हुए उस व्याकघ्रे मुँहमेंसे बारंबार मांस निकाल कर वृक्षपर बैठके खाता था और खाते समय यह बो-लता जाता था कि- मा साहसं कुरु मा साहसं कुरु । यह सब देखकर वह आदमी चकित होगया क्योंकि जैसा वह 'शकुनि' पक्षी बोलता था वैसाही उससे विपरीत करता था । साश्चर्य हो-कर वह आदमी बोला—अरे मूढ! तू कहता है कि साहस मत कर और तूही जंगलके अन्य भक्षोंको छोड़कर और आपने प्रा-णोंको भी कुछ न समझकर व्याघ्रके मुँहमेंसे मांस निकालकर

खाता है। इससे बढ़कर और कौनसा साहस है। वैसेही हे स्वामिन्! आप भी संसारके सुखोंको छोड़कर अदृष्ट सुखकी इच्छासे तप करना चाहते हो, मगर याद रक्खो कभी प्राप्त हुएको भी न खो बैठो। कुछ मुस्कराकर जंबूकुमार बोला-भद्र! तुमारे इन धुर वचनोंसे मैं कभी मोहित होनेवाला नहीं, मेरा मन अचलके समान निश्चल है, उसे देवाङ्गनायें भी चलानेको असमर्थ हैं। मैं उन तीन मित्रोंकी कथाको जानता हूँ, अत एव अपने स्वार्थसे भ्रष्ट न होऊँगा।

॥ तेरहवाँ परिच्छेद ॥

तीन मित्र.

'क्षितिप्रतिष्ठ' नामा नगरमें 'जितशत्रु' नामका राजा राज्य करता था। बड़ा विश्वासपात्र और सर्व कार्यमें अधिकारी 'सोमदत्त' नामका उस राजाका पुरोहित था। उस 'सोमदत्त' पुरोहितके तीन मित्र थे, उनमेंसे 'सहमित्र' नामका पहला मित्र था, उसके साथ हमेशा 'सोमदत्त'का परिचय रहता था। खानपान सन्मानसे उसे सदाकाल प्रसन्न रखता था बल्कि यहां तक कि जब उसे कुछ संकट आपड़ता तब 'सोमदत्त' हजारोंही रुपये खर्च कर देता और किसी भी तरहसे उसे शान्ति पहुंचाता। 'पर्वमित्र' नामका दूसरा मित्र था, उसे पर्वके दिनोंमें या कभी महोत्सवके आनेपर बुलाकर उचित सन्मान दिया जाता था अन्यथा नहीं। 'प्रणाममित्र' नामका तीसरा मित्र था, उसके साथ इतनी ही मित्रता थी कि जब कभी वह रास्तेमें मिल जाता तब उसको नमस्कार मात्र सन्मान दिया जाता, अन्यथा वह कहाँ रहता है और क्या उसकी दशा है,

इन बातोंकी तो खबरही किसे थी । संसारमें सदा किसीकी न रही और न रहेगी, दैवयोग एक दिन 'सोमदत्त' पुरोहितसे कोई ऐसा गुनाह होगया, जिससे राजाके मनमें अत्यन्त क्रोध आगया और 'सोमदत्त' को शिक्षा देनेकी तदबीर होने लगी ।

'सोमदत्त' ने यह बात जान पाई, अत एव वह अपने प्राणोंका रक्षण करनेके लिए रात्रिके समय सहमित्रके मकानपर गया और जाकर कहने लगा । मित्र! आज मुझपर बड़ा भारी संकट आपड़ा है, राजा मेरे ऊपर क्रोधित होगया है, न जाने मुझे प्राणापहारकी शिक्षा दे, इस लिए मैं तेरे घरपे कुछ दिन गुप्त रहकर इस दुःखमय समयको निकालना चाहता हूँ । मित्रका कर्तव्य भी यही होता है कि आपत्तिकालमें यथा तथा अपने मित्रकी सहायता करे, इस लिए हे मित्र! तू मुझे अपने घरपे गुप्त रखकर अपनी मित्रताको सफल कर । वज्रके समान हृदयवाला सहमित्र बोला–भाई! हमारी तुमारी मैत्री तब तकही है जब तक राजभय नहीं, राजभय होनेपर अब हमारी तुमारी मैत्री नहीं रह सकती। भला राज दूषित पुरुषको कौन अपने मकानपे रखकर मरना चाहता है? । मैं तेरे अकेलेके लिए सहकुटुंब अपने आपको अनर्थमें किस तरह गेर सकता हूँ? । इस लिए मुझे भी राजपुरुषोंका डर है तू शीघ्रही मेरे मकानसे निकल जा, जहाँ तेरी राजी हो वहाँ जा मगर यहां न खड़ा होना । इस प्रकार अपमानित होकर हृदयमें दुःख मनाता हुआ 'सोमदत्त' सहमित्रके घरसे निकल गया और पर्वमित्रके घरपे जाकर उसे अपना सर्व वृत्तान्त कह सुनाया । 'सोमदत्त' को आते देखकर पर्वमित्रने बड़े सन्मानसे आमंत्रण किया और उसका दुःखमय वृत्तान्त सु-

नके उसके हृदयमें बड़ा दुःख पैदा हुआ। पर्वमित्र बोला–भाई 'सोमदत्त!' तुमने अनेक पर्वों तथा महोत्सवोंमें मेरी खातर तव्ज्जय करके मेरे प्राणोंको भी खरीद लिया है, यदि ऐसी हालतमें मैं तुमारी सहायता न करूँ तो मुझ कुलीनकी कुलीनताही क्या? मैं तुमारी मित्रतासे विवश होकर अनर्थ भी सहन करूँगा, परन्तु इस बातमें सारे कुटुंबको कष्टमें पड़ना होगा, यह दुःख मुझे बड़ा दुस्सह्य है और तुमारे वियोगका दुःख भी कुछ कम नहीं, मैं दोनों तरफसे दुःखजालमें फँस गया, आगे देखता हूँ तो मुँह फाड़के सिंह खड़ा नजर आता है और पीछे देखता हूँ तो अथाह पानीवाली नदी देख पड़ती है। ऐसी दशामें मैं क्या करूँ कुछ सूझता नहीं।

इन बालबच्चोंको भी मैं नहीं छोड़ सकता और तुमारी सहायता करनेपर राजाको खबर होनेसे सारे कुटुंबकोही अनर्थमें उतरना पड़ेगा, अत एव इस मेरे कुटुंबके ऊपर दयाभाव करके कहीं अन्यत्र पधारो तो ठीक हो। यह कहकर पर्वमित्रने 'सोमदत्त' का सत्कार करके उसे अपने घरसे विदा किया और चलते समय आशीर्वाद दिया कि–यत्र कुत्रापि तुमारा कल्याण हो। दुर्भाग्य दूषित बिचारा 'सोमदत्त' पर्वमित्रके घरसे निकलकर विचारने लगा, अहो! जिन मित्रोंको मैं अपने प्राणोंसे भी प्यारा समझता था और अनेक प्रकारसे जिनकी भक्ति करके प्रत्याशा रखता था, जब उन मित्रोंनेही जवाब दे दिया, तब फिर अन्य तो कौन मुझे ऐसी आपत्तिसे बचा सकता है? इस वक्त सिवाय मेरे पुण्यके और कोई मुझे मेरा सहायक नहीं देख पड़ता। खैर अभीतक 'प्रणाममित्र' बाकी है उसके घर चलूँ, परन्तु जिनकी मित्रतामें मैंने हजारोंही रुपया उड़ा दिया, उन्होंनेही जब खुश्क जवाब

दे दिया तो उस बिचारेको कभी मैंने याद भी नहीं किया, इस लिए वहां कुछ सहायता मिले यह तो असंभव है अथवा इन विकल्पोंसे सरा चलकर देखूँ तो सही शायद कुछ बन जाय, दुनियांमें परोपकारी मनुष्य भी बहुत पड़े हैं। यह विचारकर 'सोमदत्त' 'प्रणाममित्र' के घर गया। 'प्रणाममित्र' 'सोमदत्त' को आता हुआ देखकर हाथ जोड़के खड़ा होगया और प्रीतिपूर्वक सन्मान देकर उसे अपने पास बैठाया। 'सोमदत' का चेहरा उदास देख 'प्रणाममित्र' बोला—भाई 'सोमदत्त!' कुशल तो है? आप इतने क्यों घबराये हुये हैं? और किस हेतुसे आज मेरे मकानको पावन किया? यदि मेरे लायक कुछ कार्य हो तो फरमाइये। 'प्रणाममित्र' के इस प्रकार वचन सुनकर 'सोमदत्त' के हृदयमें कुछ शान्ति हुई।

'सोमदत्त' ने राजाका वृत्तान्त 'प्रणाममित्र' से कह सुनाया और कहा—हे मित्र! अब मैं इस राजाकी सीमाको त्यागना चाहता हूँ। इस लिए आप मेहेरबानी करके मेरी सहायता करें, मैंने आपका कभी कुछ भी भला नहीं किया तथापि आप परोपकारी हैं, अत एव मैं आशा रखता हूँ कि आप मेरे सहायक होंगे। 'प्रणाममित्र' बोला—भाई सोमदत्त! बेशक तुमने मेरे ऊपर ऐसा कोई महान् उपकार नहीं किया तथापि मैं थोड़ीसी मित्रतासे भी आपका ऋणी हूँ, अब आपकी सहायता करके अनृणी होऊंगा। आप बिलकुल मत डरो, जब तक मेरा दममें दम है तब तक आपका कोई बाल बाँका नहीं करसकता। यह कह कर 'प्रणाममित्र' ने अपने धनुषपे बाण चढ़ा लिया और 'सोमदत्त' से बोला—चलो आप मेरे आगे आगे होजाओ मैं आपको ऐसे स्थानपे पहूँचा देता हूँ जहांपर राजा कुछ भी आपका अनिष्ट

नहीं कर सके। 'प्रणाममित्र' ने 'सोमदत्त' को ऐसे निर्भय स्थानपर पहुँचा दिया जहांपर भयका लेश भी नहीं। 'सोमदत्त' निःशंक होकर विषयसुख भोगता हुआ अपने समयको सानन्द व्यतीत करने लगा। इसका उपनय यह है; 'सोमदत्त' के समान सांसारिक जीव है, सहमित्रके समान शरीर है, पर्वमित्रके समान स्वजन संबंधि, प्रणाममित्रके समान सर्वज्ञ प्रणित धर्म है और क्रूर राजाके तुल्य कर्मराज है। जब कर्मराज कृत मरण विपदासन्न यह जीव होता है तब जिसे प्रथम अनेक प्रकारके पापकर्म करके भी सुखी रक्खा है उस शरीरपे मूर्च्छा करके उससे कुछ मदद चाहता है परन्तु वह ऐसा कृतघ्न मित्र है कि जब कर्मराज कुपित होता है तब शीघ्रही मुँह फेरके कोरा जवाब दे देता है। पर्वमित्रके समान स्वजन संबंधि मरणापदामें दवादारू करके उसके हृदयको कुछ थोड़ासा शान्तियुक्त करते हैं और उसके दुःखसे मोहवश होकर कुछ दुःखभी मनाते हैं, परन्तु कर्मराजसे बचानेके लिए असमर्थ होकर अन्तमें वे भी जवाब दे देते हैं। प्रणाममित्रके समान धर्म है जिसे कभी कभी आदर देता था, अन्तमें इस जीवको लाचार होकर इसकाही शरणा लेना पड़ता है। यह ऐसा कृतज्ञ और परोपकारी मित्र है कि इसे भावसहित यदि थोड़ासा भी आदर सन्मान दिया जाय तो यह अपनी ऐसी कृतज्ञता दिखलाता है कि एक भवमें सच्चे दिलसे मैत्री की हो तो कै भव तक देवलोकादियोंके सुखरूप फलको चखाता है और निर्भय स्थानपर लेजा छोड़ता है, परन्तु सांसारिक जीव मोहके विवश होकर इस परम कृतज्ञ मित्रको भुलाके समयपर साफ़ जवाब देनेवाले कृतघ्न मित्रोंसे अधिक मैत्री करते हैं।

इस लिए हे भद्रे! अक्षय सुख देनेवाला और अभय स्थानपर पहुँचानेवाला जो परम मित्र धर्म है, मैं उसकी उपेक्षा कदापि न करूँगा।

'जयश्री' बोली—हे तुण्ड ताण्डव धीनिधे! नागश्रीके समान कूट कथा, सुना सुनाके उलटा हमेंही रंजन करना चाहते हो।

॥ चौदहवाँ परिच्छेद ॥

नागश्री–ललितांग.

रमणीय नामा नगरमें कथाप्रिय नामका एक राजा राज्य करता था, वह राजा कथा सुननेका बड़ा रसिक था, अत एव उसने कथा सुननेके लिए नगरवासि मनुष्योंमें वारा बाँध दिया था, जिसका वारा आता उसेही राजाको कथा सुनानेको जाना पड़ता। उसी नगरमें बहुत गरीब एक ब्राह्मण रहता था, वह बिचारा सारे दिन भटक भटकके भिक्षाद्वारा अपना निर्वाह करता था और पढ़ने लिखनेमें तो उसे धौलेपे काला भी करना न आता था। क्रमसे एक दिन कथा कहनेका वारा उस निरक्षर ब्राह्मणकाही आ गया।

उस ब्राह्मणको कल क्या खाया था और क्या काम किया था इतने तक भी याद न रहता था, तो फिर कथा कहनेकी तो कथाही क्या? इसलिए वह बिचारा शोकसमुद्रमें मग्न होगया और विचारने लगा कि मेरी जीभ मेराही नाम लेते हुए तुतलाती है तो राजाके सामने तो बोलनाही दुस्कर है और मुझे

कोई कथा आती भी नहीं। यदि राजाके सामने मैं ऐसा कहूँ कि मुझे कथा सुनानी नहीं आती, तो राजा मुझे कारागार (जेलखाने) में डाल देगा और वहांपर न जाने मेरी क्या दशा होगी। ब्राह्मण जब इस प्रकारकी चिन्तामें मग्न होरहा था तब उसकी एक कुमारी कन्या उसका मलीन चेहरा देखकर बोली–पिताजी! आज आप किस चिन्तामें पड़े हैं?। लड़कीके पूछनेपर उसने अपनी चिन्ताका कारण कह सुनाया। लड़की बोली–पिताजी! आप इस बातकी चिन्ता मत करो, जब कथा कहनेका आपका वारा आयेगा तब राजसभामें जाकर आपके बदले मैं कथा सुना आऊँगी। कथा सुनानेका वारा आनेपर वह ब्राह्मणपुत्री स्नानकर श्वेत पौशाक पहनकर राजसभामें गई और राजाके सन्मुख होकर बोली–राजन्! आप सावधान होकर कथा सुनिये। ब्राह्मणपुत्रीकी यह वाचा सुनकर राजा बड़ा विस्मित हुआ और सावधान तया उसकी कथा सुनने लगा। लड़कीने भी कथा कहनी प्रारंभ कर दी। तथाहि–इसी नगरके बीचमें भिक्षाद्वारा अपने जीवनको व्यतीत करनेवाला 'नागशर्मा' नामका एक ब्राह्मण रहता है, 'सोमश्री' नामकी उसकी पत्नी है और सोमश्रीकी कुक्षिसे पैदा होनेवाली 'नागश्री' नामकी मैं उनकी पुत्री हूँ। जब मैं योवनको प्राप्त हुई तब मेरे मातापिताने एक गरीब ब्राह्मणपुत्र 'चट्ट' के साथ मेरी सगाई कर दी। एक दिन किसी प्रयोजनवश मेरे मातापिता मुझे अकेलीको घरपे छोड़कर किसीएक गाँवको चले गये। दैवयोग जिस दिन मेरे मातापिता मुझे अकेली छोड़के गाँवको गये थे, उसी दिन ब्राह्मणपुत्र 'चट्ट' मेरे घरपे आगया। मैंने मातापिताके न होनेपर भी स्नानभोजनादि उचित सन्मान किया।

मेरे मातापिताकी ऐसी गरीब हालत थी कि हमारे घर हमारे सर्वस्वके समान एकही चार पाई और एकही बिछौना था, संध्या समय होनेपर मैंने वह चार पाई और बिछौना उस ब्राह्मणपुत्र 'चट्ट' को दे दिया । रात अँधेरी थी, मैंने विचार किया कि अपने घर एकही खाट थी और वही अभ्यागतको दे दी, अब मेरे सोनेका क्या होगा? घरकी भूमि तो ऐसी है, कई दफ़ा सर्प भी फिरा करता है, इस लिए भूमिपे तो सोना उचित नहीं। अत एव इसी चार पाईपर पाँयतोंकी ओर सोजाऊँ, अँधेरी रातमें कौन देखता फिरता है? । यह विचार कर मैं निर्विकार तया 'चट्ट' के पासही एक ओर सोगई । मेरे अंग स्पर्शसे 'चट्ट' के हृदयमें विकारने स्थान किया, परन्तु लज्जावश होकर उसने मुझसे कुछ भी चेष्टा न की । उसके मनोमन्दिरमें जो विकाराग्नि पैदा हुई थी, उसका यहांतक प्रबल जोर बढ़ गया कि उसके रोकनेसे उस ब्राह्मणपुत्र 'चट्ट' के हृदयमें दुसह्य सूल उठा और उसकी वेदनासे वह शीघ्रही कालधर्मको प्राप्त होगया । मैं उसके मृतक शरीरको देखके बड़ी घभराई और अपने मनही मन बड़ा पश्चात्ताप करने लगी कि देखो मुझ पापात्माके दोपसे यह बिचारा ब्राह्मणपुत्र यमराजका अतिथि होगया । अब मैं क्या करूँ? घरमें अकेली हूँ किसके सामने इस दुःखको रोऊँ? और कैसे इस मुरदेको घरसे बाहर निकालूँ? । जब मैं इस सोच विचारमें पड़ी थी तब मुझे एक उपाय सूझ आया, वह यह था, जहां वह चार पाई बिछि हुई थी, उसके पासही मैंने एक बड़ा खड्डा खोदा और उस मुरदेके औजारसे (शस्त्रसे) टुकड़े टुकड़े करके निधानके समान उस खड्डेमें दबा दिया । लाशको दबाकर उस जमीनको ऊपरसे साफ़ करके लीप दिया और पुष्प सुगंधादिसे उस स्था-

नको सुवासित कर दिया, जिससे किसीको भी मालूम न हो। अब मेरे मातापिता भी गाँवसे आगये हैं। इस कथाको सुनकर राजा विस्मित होकर बोला-कुमारी! तूने जो यह कथा सुनाई क्या यह सब सत्य है? या कल्पित? लड़की बोली-राजन्! आप हमेशा जो कथायें सुनते हैं यदि वे सत्य हैं तो यह भी सत्य है। इस प्रकार नागश्रीने कथा सुनाकर राजाको आश्चर्यमें डाल दिया, वैसेही आप भी कल्पित कथा सुनाकर हमें ठगते हो।

'जंबूकुमार' बोला-प्रिये! 'ललितांग' के समान मैं विषयालंपट नहीं हूँ। तथाहि-'श्रीवसन्तपुर' नामा नगरमें शासन करनेमें इन्द्रके समान और रूपलावण्यमें कुसुमायुद्धके समान 'शतायुद्ध' नामका राजा राज्य करता था। रतिके समान रूपवाली और स्त्रीकलाओंको जाननेवाली 'ललिता' नामकी उसकी पटरानी थी। एक दिन अपने मनको खुश करनेके लिए रानी 'ललिता' महलके गवाक्षमें बैठी हुई बाजारमें आते जाते पुरुषोंको देख रही थी। बाजारमें घूमते हुए श्रीदेवीके पुत्रके समान अर्थात् रूपलावण्यसे साक्षात् कामदेवके समान उसने एक युवान पुरुषको देखा। उस देवकुमारके समान रूपवाले पुरुषको देखकर रानीका तन मन उसके काबुमें न रहा।

एकाग्र चित्त होकर वह पुतलीके समान उस पुरुषकी और टकटकी लगाकर देखती रही, रानी मनमें विचारने लगी कि यदि इस युवान पुरुषके गलेमें अपने हात डालकर क्रीड़ा करूँ तो मेरा स्त्रीजन्म सफल होवे। यदि इस वक्त मेरे पाँखें जम जायें तो मैं उड़कर इस मनोरम पुरुषके गलेमें जा लिपटूँ। रानीकी चेष्टाओंसे उसके मनोगत भावको जानकर पास बैठी हुई दासी बोली-स्वामिनि! आपका मन जहांपर रमण करता है वह

स्थान अनुचित नहीं योग्यही है, भला चन्द्रमा किसके नेत्रोंको आनन्द नहीं देता ? । यह सुनकर रानी 'ललिता' बोली–भद्रे ! तूने भलि प्रकारसे मेरे मनोगतभावको जानलिया, भला तेरेसी चतुरा क्यों नहीं जाने ? मैं तुझे बड़ी विश्वासपात्र समझती हूँ, अत एव मेरा कार्य भी तुझसेही होगा । जा तू इसके पास जाकर इसकी खोज तो निकाल यह कौन है ? और कहां रहता है ?। रानी 'ललिता' की आज्ञा पाकर दासी शीघ्रही महलसे उतरके बाजारमें गई और उस पुरुषका नाम ठाम पूछकर पीछे लौट आई । दासी, रानी 'ललिता' से बोली–स्वामिनि ! यह तो इसी नगरमें रहनेवाले समुद्रप्रिय साहुकारका पुत्र है और ललिताङ्ग इसका नाम है, पुरुषकी बहत्तर कलाओंमें बड़ा प्रवीण है और रूपमें भी कामदेवके समान है । इस लिए स्वामिनि ! आपका मन योग्य स्थानपरही है । लोकमें भी कहा जाता है कि–यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति । पुरुषोंमें यह एक असाधारण पुरुष है और स्त्रियोंमें एक आप रंभाके समान हैं । विधाताने जोड़ी तो योग्यही बनाई है । अब आप मुझे आज्ञा फ़रमायें जिससे मैं आपका उस युवान पुरुषके साथ संमिलन कराके मैं अपने आपको कृतार्थ करूँ ।

रानी 'ललिता' ने एक पत्रपे एक श्लोक लिखकर दासीके हाथमें दिया और कहा कि जा इस पत्रको 'ललिताङ्ग' को देकर मेरे मनोरथको पूर्ण कर । पत्रको लेकर दासी महलसे चल पड़ी । बहुतही शीघ्र जाकर वह पत्र 'ललिताङ्ग' के हातमें देकर दासीने मीठे बचनोंसे रानी 'ललिता' का मनोभाव उसे कह सुनाया । दासीकी बात सुनकर नव युवान 'ललिताङ्ग' मारे हर्षके अङ्गमें न समाया और प्रेमसे उस लेखको बाँचने लगा ।

'ललिता' ने पत्रमें यह श्लोक लिखा था ।

यथा दृष्टोऽसि सुभग तदाद्यपि वराक्यहम् ।
पश्यामि त्वन्मयं सर्वं योगेनानु गृहाणमाम् ॥

श्लोक बाँचकर मनही मन हर्षित होकर 'ललिताङ्ग' दासीसे मुस्कराकर बोला–भद्रे! भला यह बात किसतरह बन सकती है? कहां तो वह असूर्यपश्या अन्तेउरमें रहनेवाली तेरी स्वामिनी और कहां मैं वणिकपुत्र? । यह बात सर्वथा अशक्य है क्योंकि जब अन्तेउरमें रहनेवाली राजपत्नियोंको असाधारण पुरुष भी नहीं देख सकते तो फिर साधारण परपुरुषके साथ क्रीड़ा करना यह तो बिलकुलही अशक्य है । जो आदमी जमीन-पर रहकर चन्द्रमाकी किरणोंको पकड़ सके वह आदमी राज-पत्नियोंके साथ संभोग कर सकता है । दासी बोली–महाशय! बेशक आपका कहना सच है, यह कार्य अशक्य है परन्तु जिनको किसी प्रकारकी सहायता नहीं उनकेही लिए अशक्य है । आप किसीतरहकी अधीरज मत करो, आपको मैं सहायता देनेवाली बैठी हूँ । मेरी बुद्धिसे आप अन्तेउरमें रहकर राजपत्निके साथ विषयसुख भली भाँति भोग सकोगे । मैं आपको फूलोंके करंडियेमें छिपाकर ऐसी तरकीबसे अन्तेउरमें लेजाऊँगी कि किसीको शंका तक भी न होने पायगी । 'ललिताङ्ग' बोला–अच्छा जब अव-सर हो तब मुझे बुलाना । यह सुनकर दासी खुश होती हुई राजमहलको चली गई और महलमें जाकर रानीसे 'ललिताङ्ग' का वृत्तान्त कह सुनाया । अब रानी 'ललिता' का मन रात-दिन ललिताङ्गमेंही रहता है । एक दिन नगरमें कौमुदी महोत्सव था, सारा नगर उस दिन कौमुदी महोत्सवमें मग्न था । राजा भी उस दिन कौमुदी महोत्सव देखनेको नगरसे बाहर तालावपे

गया हुआ था, इस लिए 'राजमहल' उस दिन शून्यसा मालूम होता था, अत एव रानी 'ललिता' का दाव लग गया। उसने दासीको आज्ञा की कि जा अब अवसर है यदि तेरेमें कुछ चतुराई है तो उस पुरुषको अन्तेउरमें ले आ। दासी इन बातोंमें बड़ी दक्षा थी वह अवसर पाकर 'ललिताङ्ग' को देवकुमारके समान सजाकर पालकीमें बैठाके अन्तेउरमें ले आई। पालकीको लाते समय जो रास्तेमें राजपुरुष मिले उनसे दासीने कह दिया कि रानीको क्रीड़ा करनेके लिए नवीन यक्षकी मूर्ति लाई हूँ। रातका समय था कइ एक राजपुरुषोंके मनमें शंका तो पैदा हुई मगर यह रानीकी आज्ञासे लाई है यह समझकर उसे निर्णय करनेके लिए कोई भी देख न सका। दासी निःशंक होकर 'ललिताङ्ग' को महलमें रानीके पास ले आई। 'ललिताङ्ग' को देखकर 'ललिता' ऐसी प्रफुलित होगई जैसे चन्द्रमाको देखकर 'कुमुदिनी' खिल जाती है। रानी 'ललिता' ने 'ललिताङ्ग' को बड़ा सन्मान दिया और जेसे वर्षाऋतुमें वृक्षको लता आलिङ्गन करती है वैसेही रानी 'ललिता' ने 'ललिताङ्ग' को आलिङ्गन कर अपने मनोर्थको पूर्ण किया। दासी पालकीमें बैठा कर जब 'ललिताङ्ग' को यक्षकी मूर्तिके बहानेसे लाई थी तब पहरेदारोंके मनमें शंका हुई थी, मगर रानीके डरसे वे कुछ बोल न सके थे, अब पीछेसे उनके मनमें बड़ी चिन्ता हुई कि यदि अन्तेउरमें परपुरुषका प्रवेश होगया और राजाको मालूम होगया तो यमराजके समानही राजा हमें प्राणापहारकी शिक्षा देगा।

पहरेदार यह विचार करही रहे थे इतनेमें तो राजा भी कौमुदी महोत्सव देखकर पीछे लौट आया। पहरेदारोंने हाथ जोड़कर राजासे कहा—महाराज! हमारा कसूर माफ़ हो हमें

आज अन्तेउरमें परपुरुषकी शंका है । यह सुनकर राजा खुदही अन्तेउरकी तलाशी लेनेको चला । दूरसे आवाज न होने पावे इस लिए राजाने जूते उतार दिये और चुपचाप चोरके समान अन्तेउरमें जा घूसा । रानी 'ललिता' जब 'ललिताङ्ग' के साथ स्वेच्छापूर्वक क्रीड़ा कर रही थी तब उसने अपनी दासीको दरवाजेपे बैठा रक्खा था इस लिए दासीने राजाको दूरसेही आते देख शीघ्रही रानीको जना दिया । उस वक्त रानी तथा दासीको और कोई भी उपाय न सूझा । मकानके अन्दर पायखाना पासमेंही था । रानी तथा दासीने अपनी जान बचानेके लिए 'ललिताङ्ग' को उठाकर शीघ्रही उस अन्ध कूपमें डाल दिया, उस गंदकीके कूवेमें 'ललिताङ्ग' को नरकसे भी अधिक दुःख था मगर करे क्या अपने किये कर्मका फल भोगनाही पड़ा । पर्वतकी गुफामें उल्लुके समान 'ललिताङ्ग' उस दुर्गन्धके कूवेमें रहा हुआ पूर्वानुभवित सुखको याद करके विचारता है–अरे! मेरे कर्मोंने मुझे कहां इस नरककी यातनामें लाकर पटका, राजाकी रानीके भोग विना मेरा क्या काम अटका हुआ था? । यदि अब किसी तरह इस नरकावाससे निकल जाऊँ तो ताजिन्दगी कभी ऐसा काम न करूँगा । मनुष्यको विना विचारे कार्य करनेपर जो पश्चात्ताप होता है यदि विचारपूर्वक कार्य किया जाय तो वह पश्चात्ताप कभी न करना पड़े, मनुष्यको चाहिये कि जब कोई कार्य आरंभ करे तब प्रथम उसका अन्तिम नतीजा अर्थात् अन्तिम फलकी तर्फ खयाल कर लेना चाहिये । जो अकल और बुद्धि कार्य बिगड़नेपर स्फुरायमान होती है वह यदि पहले होवे तो कभी कार्य बिगड़नेही न पावे लौकिक कहावत है कि—

या बुद्धि जायते पश्चात् सा यदि प्रथमं ।
भवेन्न विनश्ये तदाकार्यं न हसेत्कोपि दुर्जनः ॥

'ललिताङ्ग' की अनुकंपासे रानी तथा दासी कुछ बचा हुआ जूठा भोजन उस अंध कूपमें डाल देती हैं उससेही बिचारा 'ललिताङ्ग' अपनी जिन्दगी पूर्ण करता है। एक दिन वर्षाऋतु आनेपर खूब वर्षात वर्षा। राजमहलका सबही पानी उस कूवेमें जा भरा क्योंकि राजमहलके पानीको बाहर जानेका रास्ता वहांसेही था। इस लिए ललिताङ्ग उस पानीके पूरमें बहकर नगरकी खाईमें आपड़ा और पानीके अत्यन्त झकोलोंसे मूर्छित होकर मसकके समान फूलके पानीके ऊपर तरता हुआ खाईके किनारेपर आलगा।

दैवयोगसे किसी कारण प्रसंग उस वक्त 'ललिताङ्ग' की धायमाता वहांपर आपहुँची। मसकके समान पानीसे पेट फूला हुआ देख 'ललिताङ्ग' को उसने पैछान लिया और खाईसे बाहर निकाल कर बड़ी हिफ़ाजतसे अपने घर ले गई। उस वक्त 'ललिताङ्ग' मूर्छासे ऐसा होगया था मानो उसके शरीरमें प्राण हैं ही नहीं। 'ललिताङ्ग' के पेटका पानी निकालनेपर और उसे रूईके पहलोंमें दबानेसे उसकी मूर्छा दूर होगई। 'धायमाता' ने उसे अपनेही घरपे रखकर अच्छा किया। अब 'ललिताङ्ग' पहले सा होगया है। यहांपर उपनय यह है कि 'ललिताङ्ग' के समान सांसारिक जीव है, रानी 'ललिता' के साथ संभोग सुखके समान संसारमें विषयसुख हैं, जो पहले किंपाक फलके समान मधुर लगते हैं और परिणाममें अति दारुण होते हैं। कूपवासके समान गर्भावास समझना, गर्भावासमें जूठे भोजनके समान माताके उच्छिष्ट भोजनसे जीवका पोषण होता है, विष्टेके कूप-

मेंसे पानीके जोरसे गटरके द्वारा खाईमें आ पड़ना यह गर्भावाससे योनिद्वारा जेर आदि मलमूत्रसे लिप्त होकर सूति गृहरूप खाईमें आपड़ता है, जो पानीके पूरसे 'ललिताङ्ग' को मूर्छा आई थी वह यह समझना कि जब जीव मलमूत्रादिसे लिप्त होकर पैदा होता है, उस समय इसको मूर्छा आजाती है और धायमाता (दायी) उस वक्त परिचरिया करके सचेतन करती है। यदि 'ललिताङ्ग' को रानी ललिता फिरसे याद करे तो क्या वह उसके पास जासकता है?।

'जंबूकुमार' की आठोंही स्त्री बोलीं-स्वामिन्! अल्प दुःखके स्थानपर भी मनुष्य जानकर नहीं जासकता तो फिर जिस आदमीने जिस स्थानपर नरकके समान वेदना भोगी हो वह आदमी उस स्थानपर किसतरह जासकता है?।

'जंबूकुमार' बोला-प्रिये! कदापि 'ललिताङ्ग' तो उसके रूपसे मोहित होकर चला भी जाये परन्तु मैं तो इस गर्भ-संक्रान्ति कारणको समझकर कदापि न रहूँगा।

॥ पंदरवाँ परिच्छेद ॥

सपरिवार जंबूकुमारकी दीक्षा और निर्वाण.

आठोंही स्त्रियोंने जंबूकुमारके मनको सुमेरु पर्वतके समान निश्चल समझकर विनयसे नम्र होकर यह विज्ञप्ति की—

स्वामिन्! यदि आप ऐसाही दृढ़ निश्चय करके बैठे हो तो फिर हमारा भी कल्याण करो क्योंकि, कहावत है कि—

नात्मकुक्षिम्भरित्वेन सन्तुष्यन्ति महाशयाः।

'जंबूकुमार' बोला—यदि तुम मेरे ऊपर भक्तिवाली हो तो खुशीसे तुम भी गुरुमहाराजके पास दीक्षा लेकर अपनी आत्माका उद्धार करो। 'जंबूकुमार' ने रातभर अनेक प्रकारके दृष्टान्त देकर अपनी आठोंहीं स्त्रियोंको बोध किया। 'प्रभव' बोला—हे मित्र! मैं भी अपने मातापितासे पूछकर आपकी दीक्षामें सहायक बनूँगा। 'जंबूकुमार' बोला—सखे इस कार्यमें बिलंब नहीं करना। प्रातःकाल होनेपर 'जंबूकुमार' के विचार अटल समझकर उसके माता-पिता, सासु-सुसरे और अन्य भी स्वजन संबंधि 'जंबूकुमार' को बोले—महाशय! यदि तुमारा विचार संसारको त्यागनेका है तो हम तुमारे कार्यमें विघ्न करना नहीं

चाहते, बल्कि हम भी इस असार संसारको छोड़कर तुमारे साथही दीक्षा लेंगे। 'जंबूकुमार' के माता-पिता आदि स्वजनोंने अर्थिजनोंको दान देना शुरु किया और 'जंबूकुमार' भी स्नान करके दीक्षाके योग्य वस्त्राभूषण पहनने लगा। दोनों तरफ़से उत्सवका पार न रहा, दीक्षामहोत्सवमें जो कोई भी 'याचक' जिस वस्तुकी याचना करता है उसे वही वस्तु दीजाती है, उस वक्त 'जंबूकुमार' दान देता हुआ कल्प शाखीके समान शोभता था। अब दीक्षा लेनेके लिए गणधर स्वामीके पास जानेकी तैयारी होने लगी, अत एव शुभ सुचक बाजे बजने लगे और मंगल पाठ पढ़े जाने लगे। अनादृत नामा जंबूद्वीपके अधिपति देवने 'जंबूकुमार' का सानिध्य किया। 'जंबूकुमार' शिबिका (पालकी) में बैठ गया, 'शिबिका' को स्वजनसंबंधियोंने उठा लिया, हजारोंही आदमी जय जय शब्द करते हुए 'शिबिका' के पीछे चल पड़े। थोड़ीही देरमें 'गणधर' स्वामिके चरणारविन्दोंसे पवित्र उद्यानमें पहुँच गये। उद्यानमें जाकर 'शिबिका' को ठहराया गया। 'जंबूकुमार' ने शिबिकासे नीचे उतरके गणधर भगवानके चरणारविन्दोंमें भक्तिपूर्वक पंचांग नमस्कार किया और हाथ जोड़कर यह विज्ञप्ति की कि भगवन्! संसारसागरसे पार उतारनेमें जहाजके समान और कर्ममलको दूर करनेमें निर्मल पानीके समान दीक्षा देकर मुझे सपरिवारको आपके चरणकमलोंका भ्रमर बनाओ। करुणारससागर श्री सुधर्मास्वामिने सपरिवार 'जंबूकुमार' को यथाविधि दीक्षा दी। अब हम इनको जंबूकुमार न कहके श्री जंबूस्वामीके नामसे संबोधित करेंगे क्योंकि अब ये तारकुल दुनिया होगये हैं। पीछे 'प्रभव' भी अपने माता-पिताकी आज्ञा लेकर श्रीगणधर भगवानके चरणोंमें आ-

गया । गुरुमहाराजने ‘प्रभव’ को जंबूस्वामीकाही शिष्य बना दिया याने ‘प्रभव’ को जंबूस्वामीके नामकी दीक्षा दी गई ।

‘जंबूस्वामी’ श्रीसुधर्मास्वामिके चरणारविन्दोंमें भ्रमरताको धारण करते हुए और दुःसह बाईस परीषहोंको सानन्द सहन करते हुए गुरुमहाराज श्रीसुधर्मास्वामिके साथ विचरते हैं । एक दिन श्रीगणधर भगवान् जंबूस्वाम्यादि शिष्योंके सहित विहार करते हुए ‘चंपा’ नगरीमें पधारे । ‘चंपापुरी’ के बाह्योद्यानमें कल्प शाखीके समान श्री ‘गणधर’ भगवान समवसरे । नगरवासि जनोंको मालूम हुआ कि श्री गणधर भगवान बाह्योद्यानमें आकर समवसरे हैं, अत एव नगरीके श्रद्धाशालि लोग श्री गणधर भगवानको वन्दन करनेके लिए टोलेके टोले चल पड़े और खुशीका तो पारावार न रहा, स्त्रीवर्गमें तो इतनी उतावल होगई कि भगवान महावीरस्वामिके दीक्षा समय जो हालत हुई थी । जो श्रीमान् लोग थे वे आभूषण वगैरह पहनकर अपने अपने वाहनोंपे बैठकर जा रहे थे, उस समयकी शोभा कुछ अलौकिकही देख पड़ती थी । ‘चंपा’ नगरीमें उस वक्त श्रेणिक राजाका पुत्र ‘कूणिक’ राज्य करता था, उसने नगरवासि जनोंको सजबज कर जाते देख अपने नौकरसे पूछा कि ये सब लोग कहां जाते हैं? क्या आज नगरसे बाहर यात्रा है? या नगर बाहर किसी मन्दिरमें पूजामहोत्सव है? या कोई हमारे पुण्योदयसे जैनमुनि पधारे हैं? जो इस प्रकार नगरके लोग सजबज कर बड़ी शीघ्रतासे जारहे हैं । नौकरने उन लोगोंसे पूछ कर राजासे अर्ज की कि हजूर नगरके बाह्योद्यानमें भगवान श्री सुधर्मास्वामी समवसरे हैं, उन्हें वन्दन करनेको सब लोग जा रहे हैं ।

यह सुनकर राजा अपने मनही मन विचार करने लगा कि धन्य है इन नगरवासि जनोंको जो गणधर भगवानको वन्दन करनेके लिए इतनी जल्दी कर रहे हैं, मैं जाग्रित होकर भी निद्रावस्थामें पड़े हुएके समान हूँ जो उन्हें यहां पधारे हुओंको भी मैं जान न सका । खैर अब विचारोंसे सरा, अब तो मुझे भी शीघ्रही वहां जाकर गणधर भगवानको वन्दन करना उचित है, क्योंकि ये महात्मा अप्रतिबद्ध होते हैं और पवनके समान एकत्र स्थायी भी नहीं होते । यह विचार कर हर्षोत्कर्ष मनवाले राजा 'कूणिक' ने सिंहासनसे उठकर शशीकिरणोंके समान श्वेत वस्त्र पहनके जगमगाती ज्योतवाले मोतियोंके कुण्डल कानोंमें धारण किये और लावण्यरूप नदीके झागों (फेनों) के समान विमल मोतियोंका हार कण्ठमें धारण किया, अन्य भी मुकुटादि राजचिह्न आभूषणोंसे विभूषित होकर राजा कल्प शाखीके समान शोभने लगा । कल्याणका कारणभूत और शत्रु लोगोंको अ-कल्याणदायक 'भद्र' नामा हाथीको सजवाकर राजा 'कूणिक' उसपे सवार होगया, उस वक्त राजा 'कूणिक' इन्द्रकी शोभाको धारण करता था, भद्र नामा हाथी भी अपने गण्डस्थलोंसे मद जल वर्षाता हुआ और गर्जारव करता हुआ वर्षाकालके मेघके समान शोभने लगा । हाथीके चारों ओर हजारोंही घोड़े-सवार चल पड़े और मंगलके सूचक अनेक राजवाजिन्तर बजने लगे, बाजोंके शब्दकी प्रतिध्वनिसे आकाश शब्दमय होगया । कुछ अरसेमें गणधर भगवान श्रीसुधर्मास्वामिके चरणकमलोंसे पवित्र उद्यान भूमिमें राजा सपरिवार जापहुँचा, हाथीवानने हाथीको बैठा दिया, राजाने हाथीसे नीचे उतरके जूते उतारे और छत्र चामरादि राजचिह्न दूर करके गणधर भगवान श्री

सुधर्मास्वामीको भक्तिपूर्वक हाथ जोड़के दूरसेही नमस्कार किया। पश्चात् विधिपूर्वक वन्दन कर गणधर भगवानके चरण-कमलोंकी रज अपने मस्तकपर चढ़ाकर भक्तिशालियोंमें अग्रेसरी राजा 'कूणिक' भगवान सुधर्मास्वामिके मुखारविन्दकी ओर दृष्टि देकर शिष्यके समान उनके सन्मुख बैठ गया। करुणासमुद्र गणधर भगवान श्रीसुधर्मास्वामिने संसारि जीवोंके ऊपर अनुग्रह कर धर्मदेशना देनी प्रारंभ कर दी, गणधर भगवानकी धर्मदेशना समय पुस्करावर्त मेघसा वरसता था। सुधाके समान धर्मदेशना सुनकर बहुतसे भव्यात्मा धर्ममें जुड़ गये और कितनेएक लघु-कर्मि जीवोंने गणधर भगवानके चरणारविन्दोंमें असार संसारको लात मारके दीक्षा ग्रहण की। देशना समाप्त होनेपर गणधर भगवानके शिष्योंकी ओर देखता हुआ राजा 'कूणिक' जंबूस्वामिकी ओर इशारा करके बड़ी नम्रतासे बोला—भगवन्! इस महामुनिका ऐसा अद्भुत रूप, ऐसा सौभाग्य और ऐसा अद्भुत तेज है कि जिससे इस महात्माके दर्शन मात्रसेही मनुष्योंका चित्त ऐसा आकर्षित होजाता है जैसे मालतीके पुष्पको देखकर भ्रमर। यमुना नदीकी तरंगोंके समान तो इस महात्माके स्याम वर्णवाले केश हैं, नेत्र कानोंतक लंबे और विक-सितारविन्दके समान मनोज्ञ हैं, नासिका तोतेकी चोंचके सदृश है, भाल (मस्तक) बड़ा विशाल है, गरदन लंबी और सीधी है, भुजायें मृणाल दण्डके समान सरल और गोडोंतक लंबी हैं, मध्य भाग इतना पतला है कि एक मुष्ठिमें ग्रहण होसकता है, जंघायें कदलीके समान हैं, पैरोंकी ऊँगलियोंके नख बिजलीके सदृश चमक रहे हैं, कहांतक ज्यादा वरनन करें हमें तो यह मालूम होता है। चंद्रमाकी सौम्यता और सूर्यका तेज लेकर विधाताने

इनकेही अन्दर निविष्ट कर दिया है क्योंकि तेजके प्रभावसे हम इनका रूप भी यथार्थ नहीं देख सकते और इस महामुनिके मुखचंद्रमाको देखकर मेरा हृदय समुद्रके समान बढ़ता हुआ अत्यन्त प्रीतिको धारण करता है और ऐसा मन होता है कि आंखें निमेष (यानी आंखोंको न टिमटिमाकर सदैव इनकी ओर एकाग्र दृष्टिसे देखता रहूँ।) गणधर भगवान श्रीसुधर्मास्वामिने यह सुनकर राजा कूणिकको जंबूस्वामिका पूर्वभव वृत्तान्त कह सुनाया, जैसे पहले भगवान श्रीमहावीरस्वामिने राजा श्रेणिकको सुनाया था। भगवान सुधर्मास्वामी बोले-राजन्! पूर्वभव कृत तपके प्रभावसे इस महात्माका इतना तेज, रूप, सौभाग्यादि है। यह महामुनि अन्तिम देहधारी और अन्तिम केवली होकर इसी भवमें मोक्षपदको प्राप्त होगा और इसके मोक्ष जानेपर मनः पर्यव ज्ञान १, परमावधि ज्ञान २, आहारक शरीर लब्धि ३, पुलाक लब्धि ४, जिनकल्प ५, क्षपकश्रेणि ६, केवलज्ञान ७; पाँच प्रकारके चारित्रमेंसे ऊपरके तीन भेद हैं यथाक्षात चारित्र ८, परिहार विशुद्धि चारित्र ९ और सूक्ष्म संपराय चारित्र १०। इनमेंसे जो यथाक्षात चारित्र है, इस चारित्रके विना केवलज्ञान प्राप्त नहीं होता (यानी यथाक्षात चारित्र होनेपरही केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है अन्यथा नहीं और केवलज्ञानधारी महात्माको सदैव यथाक्षात चारित्र होता है) ये सब मिलकर दश वस्तुयें इस महात्माके मोक्ष जानेपर भरतक्षेत्रमें विच्छेद होजायँगी। यानी जंबूस्वामिके बाद इन वस्तुओंमेंसे किसीको भी कोई वस्तु प्राप्त न होगी। यह सुनकर राजा 'कूणिक' गुरुमहाराजको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर सपरिवार चंपापुरीको चला गया।

गणधर भगवान श्रीसुधर्मास्वामी भी अपने शिष्य परि-

वार सहित वहांसे विहार कर भगवान श्रीमहावीरस्वामीके चरणोंमें चले गये । उस दिनसे लेकर श्रीसुधर्मास्वामी, भगवान श्रीमहावीरस्वामीके साथही विचरे । गणधर भगवान श्री सुधर्मास्वामिने पचास वर्षकी उम्रमें श्रीमहावीरस्वामिके पास दीक्षा ग्रहण की थी, दीक्षा लेकर तीस वर्ष तक भगवान श्री महावीरस्वामिकी पवित्र सेवामें रहे । भगवान श्रीमहावीरस्वामिके मोक्ष जाने बाद बारह वर्ष तक तीर्थकी प्रभावना करते हुए छद्मस्थावस्थामें विचरे । बानवे वर्षकी अवस्थामें उन्हें केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई । केवलज्ञानावस्थामें आठ वर्ष तक भव्य जीवोंको बोध करते हुए पृथ्वी तलपे विचरते रहे । पूर्णायु सौ वर्षका पालके और निर्वाण समय निकट समझकर 'जंबूस्वामी' को अपने पदपर स्थापन करके भगवान श्री सुधर्मास्वामी निर्वाणपद (यानी मोक्षपदको प्राप्त हुए । इधर श्री 'जंबूस्वामी' ने गणधर भगवान श्रीसुधर्मास्वामिके निर्वाण बाद तीव्र तपस्या आचरण करते हुए केवलज्ञानकी प्राप्ति की । चरम केवली श्री 'जंबूस्वामी' केवलज्ञानावस्थामें विचरते हुए अनेक भव्य जीवोंको धर्मके रास्तेमें चलाते हुए भगवान श्रीमहावीरस्वामिके निर्वाण बाद चौसठ वर्ष तक निरतिचार चारित्र पालकर और प्रभवस्वामिको अपने पदपर स्थापनकर कर्म मलके दूर होनेसे जन्ममरणसे रहित होकर अक्षयपदको प्राप्त होगये ।

॥ सोलहवाँ परिच्छेद ॥

शय्यंभवसूरि और मणकमुनि.

तत् पश्चात् कात्यायन कुलोद्भव श्रीप्रभवस्वामिने तीर्थकी प्रभावना करते हुए भूमितलको पवित्र किया । एक दिन साँजकी आवश्यक क्रियासे फरागत हो रातके समय योग निद्रामें स्थित होकर श्रीप्रभवस्वामी अपने मनही मन विचारने लगे कि मेरे बाद श्री संघको संसार-सागरसे पार उतारनेमें जहाजके समान और जिनेश्वर देवके कथन किये धर्मरूप 'अम्भोज' को विकसित करनेमें सूर्यके समान इस मेरे पदके योग्य कौन है ? । इस विचारमें मग्न होकर श्रीप्रभवस्वामीने अपने श्रुत ज्ञानमें उपयोग देकर साधुसमुदाय तथा श्री संघमें देखा, मगर दैवयोग उस वक्त उन्हें साधुसमुदाय तथा समस्त संघमें कोई भी आदमी ऐसा नजर न आया, जो उनके पदके योग्य हो और जिनेश्वर देवके धर्मकी प्रभावना कर सके, अत एव उन्होंने फिरसे अपने ज्ञानभानुसे अन्य दर्शनमें उपयोग दिया क्योंकि कीचड़में पड़ा हुआ भी रत्न ग्रहण

किया जाता है, श्री प्रभवस्वामिने अपने श्रुत ज्ञानबलसे राजगृह नगरमें आसन्न भव्यत्व है जिसका (यानी लघुकर्मी) और वत्सकुलोद्भव श्री 'शय्यंभव' नामा द्विज (ब्राह्मण) को यज्ञ कराते हुए देखा। श्रीप्रभवस्वामी अपने शिष्य परिवार सहित विहारकर राजगृह नगरमेंही आ पधारे और गौचरीका (यानी भिक्षाका) समय होनेपर दो मुनियोंको श्रीप्रभवस्वामिने आज्ञा दी कि अमुक ठिकाने यज्ञ होरहा है तुम उस यज्ञके वाड़ेमें जाओ और वहां जाकर धर्मलाभ आशीर्वाद दो, जिस वक्त यज्ञकारक लोग तुमारे सामने हो कुछ बोलें तो तुमनें पीछे चलते हुए यों कहना—

अहोकष्ट महोकष्टं तत्त्वं विज्ञायते न हि।
अहोकष्ट महोकष्टं तत्त्वं विज्ञायते न हि॥ १॥

यह शिक्षा देकर गुरुमहाराजने गौचरीके समय उन दोनों मुनियोंको यज्ञके वाड़ेमें भेजा। उस वक्त यज्ञका वाड़ा यज्ञकारक लोगोंने यज्ञ सामग्रीसे संपूर्ण किया हुआ था, दरवाजेपर आम्रके पल्लवोंकी मालायें बांधि हुई हैं और अनेक प्रकारकी धजायें भी लगाई हुई हैं, यज्ञमें होम करने योग्य अनेक वस्तुओंसे चँगेरियां भरी रक्खी हैं, यज्ञस्तंभके साथ एक बकरा होम करनेके लिए बँधा हुआ है, ब्राह्मण लोग सामिधेनी मंत्रका जाप कर रहे हैं और वेदीके मध्यमें प्रदीप्त अग्नि जल रहा है, ऐसे अवसरमें गुरुमहाराजकी आज्ञा पाकर वे दोनों मुनि वहांपर जा पहुँचे और धर्मलाभाशीर्वाद देकर कुछ देर ठसके, जब यज्ञकारक सब लोग उन मुनियोंकी ओर बितर बितर देखने लगे तब उन मुनियोंने पीछे फिरते हुए गुरुमहाराजका सिखलाया

हुआ वही पूर्वोक्त श्लोक बोला—जिसे हम फिरसे यहां लिख देते हैं—

अहोकष्ट महोकष्टं तत्त्वं विज्ञायते न हि ।
अहोकष्ट महोकष्टं तत्त्वं विज्ञायते न हि ॥

जिस वक्त मुनियोंने पीछे चलते हुए पूर्वोक्त श्लोक बोला था उस वक्त यज्ञके करानेवाला 'शय्यंभव' नामा ब्राह्मण यज्ञ वाड़के दरवाजेमेंही खड़ा था, अत एव उसने जैन मुनियोंका कहा हुआ श्लोक ध्यानपूर्वक सुना था ।

'शय्यंभव' उस श्लोकको सुनकर इस विचारमें पड़ गया कि उपशम प्रधान ये जैन महात्मा कभी भी मृषा भाषण नहीं करते अत एव धर्मतत्त्वमें मेरा मन संदिग्ध होता है क्योंकि ये महात्मा कहते हैं कि कष्टके सिवाय इसमें (यज्ञमें) कुछ भी तत्त्व मालूम नहीं होता और मैं तत्त्व समझकर यह यज्ञादि अनुष्ठान कराता हूँ । इसमें कुछ न कुछ अवश्य भेद रहा हुआ है, चलूँ उपाध्यायजीसे इस बातका निर्णय करूँ, इस प्रकारकी विचार तरंगोंमें लीन होकर 'शय्यंभव' द्विज उपाध्यायके पास गया और उपाध्यायसे धर्मतत्त्व पूछा, उपाध्यायजीने कहा—'वेद'से उत्कृष्ट कोई तत्त्वही नहीं है । 'शय्यंभव' क्रोधसे आंखें लाल करके बोला—हूं मैं जान गया हूँ, आज तक तुमने मुझे दक्षिणाके लोभसे वेदको तत्त्व बतलाकर यज्ञादि अनुष्ठान कराकर खूब ठगा है, रागद्वेष रहित शान्तात्मा और सबपर समान दृष्टि रखनेवाले जैनमुनि कदापि झूठ नहीं बोल सकते क्योंकि वे किसी प्रकारका परिग्रह नहीं रखते बल्कि अपने शरीरपर भी निर्ममत्त्व रहते हैं, उनके और तुमारे कथनमें जमीन आशमानका भेद नजर आता है, अत एव इसीसे मालूम होता है कि दक्षिणा आदिके लोभसे तुम मुझे

उलटे मार्गपे चला रहे हो, बस आजसे तुम मेरे गुरु नहीं बल्कि कट्टर शत्रु हो, जो मुझे आजन्म विश्वास देकर ठगा, इस वक्त तुम नितान्त शिक्षाके योग्य हो या तो असली तत्त्व बता दो वरना अभी इस तलवारसे तुमारा शिर उड़ा देता हूँ क्योंकि दुष्ट आदमीके मारनेमें उतना पाप नहीं जितना अधर्म सेवनसे होता है, यह कहकर 'शय्यंभव' ने म्यानसे झट तलवार खींच ली। जिस वक्त 'शय्यंभव' ने क्रुद्ध होकर उपाध्यायको मारनेके लिए म्यानसे तलवार निकाली थी उस वक्त 'शय्यंभव' ऐसा मालूम होता था मानो उपाध्यायकी मृत्यु पत्रिका लेकर साक्षात यमराजका दूतही आ गया। 'शय्यंभव' को इस प्रकार क्रोधित देखकर उपाध्यायजीका कलेजा उछलने लगा और होश हवाश उड़ गये। उपाध्यायजी मनमें विचारने लगे यदि इस वक्त मैं असली तत्त्व न बताऊँगा तो अवश्यमेव यह द्विज मेरे प्राणोंका अपहार क्षणभरमेंही कर डालेगा, अब असली तत्त्व बतलानेका ठीक समय उपस्थित हुआ है क्योंकि वेदोंमें भी यह कहा है और हमारा आम्नाय भी यही है कि—

कथ्यं यथातथं तत्त्वं शिरच्छेदे हि नान्यथा।

अर्थात् जब अपनी जानपर आबने और सिरछेदन होनेही लगे तबही सत्य वस्तुका निरूपण करना अन्यथा नहीं, इस लिए अब तो इसे यथातथ्य तत्त्व बतलाकर अपने प्राणोंका रक्षण करना चाहिये, जीता हुआ आदमी अनेक प्रकारके कल्याणकारि रस्ते देख सकता है। यह विचार कर अपनी आत्माकी रक्षा करनेके लिए उपाध्यायजी बोले—भई ठहरो मैं अभी तुम्हें असली तत्त्व बतलाता हूँ, देखो यह जो यज्ञमंडपमें स्तंभ है इसके नीचे अर्हद्देवकी प्रतिमा दबी हुई है और नीचे दबी हुई

कीही हम लोग गुप्त रीतिसे पूजा करते हैं क्योंकि उसकेही प्रभावसे हमारा यज्ञादि कर्म निर्विघ्नतया परिसमाप्त होता है वरना नारद और सिद्धपुत्रादि महातपस्वी जो अहिंसामय अर्हद्धर्मके पालक हैं वे अर्हत् प्रतिमाके विना हमारे इस यज्ञको खंडित कर डालते हैं, यह कहकर उपाध्यायजीने यज्ञस्तंभको खोद डाला और उसके नीचेसे स्फटिक रत्नकी अर्हत्प्रतिमा निकाल कर उच्च स्वरसे यों बोला—

इयं हि प्रतिमा यस्य देवस्य श्रीमदर्हतः ।
तत्त्वं तदुदितो धर्मो यज्ञादि तु विडम्बना ॥ १ ॥
श्रीमदर्हतः भणितो धर्मो जीवदयात्मकः ।
पशुहिंसात्मके यज्ञ धर्मसंभावनापिका ॥ २ ॥

अर्थात् जिस देवाधिदेवकी यह प्रतिमा है उसकाही कथन किया हुआ धर्म तत्त्वरूप है और यज्ञादि अनुष्ठान सब विडम्बनारूप है, क्योंकि जिस देवकी यह मूर्ति है उस रागद्वेष रहित देवका कथन किया हुआ जो धर्म है वह जीवदयात्मक होनेसे यथार्थ अहिंसा परमो धर्म है, यज्ञादि कर्ममें पशु आदिकी हिंसा करनी पड़ती है, इस लिए वहांपर अहिंसा परमो धर्मः यह शब्दही लागु नहीं पड़ता तो फिर धर्मकी तो संभावनाही कहां? और भई हमारी तो आजीवकाही इससे चलती है यदि हम त्यागमय धर्मको बताने लगें तो हमारी तो वृत्तिही नष्ट होजाय और हमें कोई तीन कौड़ीको भी न पूछे, मैने आजतक अपनी उदर पूरतिके लिए दंभसे तुम्हें बहुत ठगा पर अब तुम सत्य धर्मरूप तत्त्वको ग्रहण करो और आजतकके मेरे दंभ भरे कर्मोंपर खयाल न करके मुझे क्षमा करो । उपाध्यायकी यह वाणी सुन कर 'शय्यंभव' ने अपने हाथसे तलवार एक तरफ़ फैंक दी

और उपाध्यायको नमस्कार करके बोला—बस अब असली तत्त्व बतानेसे तुम मेरे असली उपाध्याय हो और सत्य बात बतलानेसे मैं तुमारे ऊपर संतुष्ट हूँ, अत एव ये यज्ञ संबंधि सुवर्णादिके बरतन जो हजारों रुपयोंकी कीमतके हैं, इन्हें मैं तुमको समर्पण करता हूँ। यह कहकर 'शय्यंभव द्विज' ने जितनी वहांपर यज्ञ-सामग्री थी वह सबही यज्ञकारक ब्राह्मणोंको दे दी और आप अपने घर भी न जाकर जिधर वे मुनि गये थे उसी ओर उन्हें पूछता हुआ सीधा श्रीप्रभवस्वामिके पास जा पहुँचा। श्रीप्रभव-स्वामिकी वसतिमें जाकर भक्तिपूर्वक क्रमसे सब मुनियोंको नम-स्कार किया, मुनियोंने भी उसे धर्मलाभाशीर्वादसे अभिनन्दित किया, पश्चात् हाथ जोड़कर भगवान् श्रीप्रभवस्वामिके सन्मुख बैठके यह विज्ञप्ति की—भगवन्! निर्वृत्तिका हेतु और मोक्षका कारणभूत आप कृपा कर मुझे धर्मतत्त्व समझाओ, मेघकी धाराके समान कर्णप्रिय वाणीसे भगवान श्रीप्रभवस्वामी बोले-हे भव्यात्मन्! भव, भीरु तथा अपनी आत्माका हित इच्छनेवाले आदमीको सदैव यह विचारना चाहिये कि प्रवृत्तिमय संसारसागरसे पार उता-रनेवाला जो धर्मतत्त्व है वह कैसा होना चाहिये क्योंकि, इह लोक और परलोकमें सुख प्रदानका कारणभूत धर्मतत्त्वके सिवाय अन्य कोई भी तत्त्व नहीं है, धर्मतत्त्वकी इच्छा करनेवाले पुरुषको सदैव सत्य वचन बोलना चाहिये, वह भी प्रिय और प्रमाणोपेत होना चाहिये, मगर ऐसा सत्य भी नहीं बोलना जिससे अन्य जीवको पीड़ा हो, सदाकाल अदत्त द्रव्य अथवा अन्य कोई वस्तु न ग्रहण करनी चाहिये, नित्य संतोषी होना चाहिये, संतोषी जन सदा-काल सुखी और बेफिकर रहता है, मैथुनका सर्वथा त्याग करना चाहिये, ब्रह्मचारी पुरुष प्रायबुद्धिशाली और विचारशील होता

है, जब वह बुद्धिमान और विचारशील होगा तो धर्मतत्त्वको भली भाँति समझ सकेगा; मैथुन, संसराविष वृक्षका मूल है यदि मूलको काटा जाय तो यह जीव जन्ममरणरूप जो संसार है, फिर उसकी वृद्धिको प्राप्त नहीं होता, सर्व प्रकारके परिग्रहका त्याग करना बल्कि अपने शरीरपर भी निःस्पृह रहना चाहिये, किसीपर राग–द्वेष नहीं करना और सर्व जीवोंको अपनी आत्माके समान समझना चाहिये, अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अकिंचन, ये जो पाँच महाव्रत हैं येही मोक्षपदका कारण हैं, यदि तुम अपनी आत्माका उद्धार करना चाहते हो तो इन पाँच महाव्रतोंको धारण करके अपने शरीरपर भी निःस्पृह होकर निरतिचार चारित्र पालकर निर्वृत्तिस्थानको प्राप्त करो। भगवान श्रीप्रभवस्वामिके मुखारविन्दसे धर्मतत्त्व जानकर 'शय्यंभव' संसारसे उद्विग्न हुआ हुआ भगवान श्रीप्रभवस्वामिको नमस्कार कर हाथ जोड़के यह विज्ञप्ति करने लगा कि भगवन्! अगुरुके वचनसे बहुत समयतक मेरी अतत्त्वमें तत्त्वबुद्धि रही जैसे नसेमें पागल हुए आदमीको मिट्टिका पिण्ड भी सुवर्णही देख पड़ता है, वैसेही मैं भी मिथ्यात्वरूप नसेमें पागल होकर आजतक अतत्त्वको तत्त्व समझता रहा, अब कुछ प्रबल पुण्यसे या आपकी कृपासे धर्मतत्त्वको जाना है, अत एव भवकूपमें पड़ते हुए जीवको हस्तालंबनके समान दीक्षा देकर मुझे कृतार्थ करो।

श्रीप्रभवस्वामिने शय्यंभव द्विजको योग्य समझकर विधिपूर्वक दीक्षा दे दी। अब श्रीशय्यंभवस्वामी दीक्षा लेकर अनेक प्रकारके अभिग्रह और घोर तपस्यायें करते हुए तथा दुःसह परिषहोंको सहन करते हुए गुरुमहाराजके साथ उल्लासपूर्वक विचरते हैं बल्कि जब कभी अत्यन्त घोर परिषह सहन करनेका समय

आता है तब उनका चारित्रके अन्दर और भी दृढ़ता और उत्साह बढ़ता है। छठ अट्ठम आदि घोर तपस्यायें करते हुए श्रीशय्यंभवस्वामिका तेज सूर्यके समान दीपने लगा। थोड़ेही समयमें श्रीशय्यंभवस्वामिने गुरुमहाराजके चरणकमलोंमें भ्रमरताको धारण करते हुए चतुर्दश पूर्वकी विद्याको प्राप्त कर ली, अब श्रुत ज्ञानसे गुरुमहाराजकी समानताको धारण करते हुए अपने पवित्र चरणोंसे विचरकर पृथ्वी तलको पावित करते हैं। एक दिन श्रीप्रभवस्वामी अपना निर्वाण समय निकट समझकर अपने शिष्य श्रीशय्यंभवस्वामिको अपने पदपर स्थापन कर आराधनादिपूर्वक पंडित मृत्युसे देवलोकके अतिथि बन गये। इधर जब शय्यंभवद्विजने दीक्षा ग्रहण कर ली थी उस वक्त वहांके लोगोंने मिलकर साश्चर्य अफसोस जाहिर किया कि देखो 'शय्यंभव' कैसा निष्ठुरोंसे भी निष्ठुर है जो सर्व प्रकार सांसारिक सुख होनेपर अप्सराके समान युवती स्त्रीको त्यागकर जैन मुनियोंके पीछे लग गये। अब इस बिचारी सुशीला उसकी स्त्रीका क्या हाल होगा? स्त्रियोंको पतिके वियोगमें प्राय पुत्रका आधार होता है परन्तु इस बिचारीको तो वह भी नहीं। सगे संबंधियोंने शय्यंभवकी पत्नीसे पूछा कि हे भद्रे! तुझे कुछ गर्भकी संभावना है या नहीं?।

'शय्यंभव' की पत्नीको उस वक्त कुछ थोड़ेसे दिनोंका गर्भ था, अत एव उसने पूछनेपर प्राकृत भाषामें उत्तर दिया कि मणयं, अर्थात् मनाग् (यानी कुछ संभावना है) शय्यंभव द्विजकी स्त्रीने प्राकृत भाषामें जो उत्तर दिया, इससे यही मालूम होता है कि उस समय प्राकृत भाषाका भारत वर्षमें बहुतही प्रचार था। अब दिनपर दिन शय्यंभवकी पत्नीका गर्भ वृद्धिको प्राप्त होने लगा,

नव मासप्रति पूर्ण होनेपर 'शय्यंभव' की भार्याने जनानन्दी सूर्यके समान पुत्ररत्नको जन्म दिया । पुत्रका जन्म होनेपर शय्यंभवकी पत्नीको जो हर्ष हुआ उस हर्षमें वह अपने प्राणप्यारे पतिके वियोगको भूल गई, परन्तु उस समय उसे इस बातका खेद भी बड़ा भारी था कि वह यह विचारती थी, मेरे प्रथमही प्रसवमें पुत्रका जन्म हुआ है यदि इस वक्त इस बालकका पिता होता तो बड़े भारी समारोहसे इसका जन्मोत्सव करता, ये विचार उसके मनही मन होते थे मगर बन क्या सकता था, अल्प पुन्यवाले जीवोंके विचार प्राय व्यर्थही जाते हैं । शय्यंभवके चले जानेपर स्वजनोंने शय्यंभवकी स्त्रीसे जब गर्भके लिए पूछा था तब उसने मणयं, यह शब्द बोला था, इसी लिए उस पुत्रका नाम 'मणक' रक्खा गया, माता बड़े प्रेमसे उस पुत्ररत्नका पालन पोषन करती है, ज्यों ज्यों पुत्र वृद्धिको प्राप्त होता है त्यों त्यों माताकी आशालतायें भी वृद्धिको प्राप्त होती हैं । 'मणक' जब आठ वर्षका हुआ तब वह कुछ कुछ लौकिक व्यवहारको समझने लगा, क्योंकि वह बचपनमेंही बड़ा बुद्धिमान् और विचारशील था, अत एव वह एक दिन अपनी माताका सधवा वेष देखकर उससे बोला—माता मेरे पिताजी कहां हैं ? मैने आज तक उन्हें देखा नहीं क्या वे जीते हैं कहीं ? जो तुम्हारा यह सधवाका वेष है । बालक मणकका यह वचन सुनकर उसे पति वियोग याद आगया, अत एव वह बच्चेको छातीसे लगाकर अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे बोली—बेटा तेरे इस प्रश्नसे मेरे हृदयमें बड़ा दुःख होता है, जब तू गर्भमें था तब तेरे पिताने मुझे निराधारको छोड़कर जैन दर्शनमें दीक्षा ग्रहण करली थी, जैसे तूने तेरे पिताको नहीं देखा ऐसेही तेरे पिताने भी तुझे

नहीं देखा है, क्योंकि जब वे मुझे छोड़कर चले गये थे तब तू थोड़ेही दीनोंका गर्भमें था । तेरे पिताका नाम शय्यंभव था, उन्हें यज्ञ करानेमें बड़ा प्रेम रहता था । एक दिन यज्ञ कराते समय २ दो जैन साधु आये न जाने उन धूर्त मुनियोंने तेरे पिताको क्या कर दिया वे मुझसे भी विनाही मिले उन मुनियोंके पीछे चले गये, मातासे पिताका वृत्तान्त सुनकर 'मणक' के दिलमें बड़ा आश्चर्य हुआ, वह अपने मनमें विचारने लगा कि पिताका किसी तरह और कहीं भी यदि दर्शन हो तो मेरा जन्म सफल है, सिंहोंके सिंहही पैदा होते हैं जिस बालकने अपने पिताका कभी नाम तक भी न सुना था आज उसी बालक 'मणक' के हृदयमें पिताका वृत्तान्त सुनकर ऐसी भक्ति और प्रेम पैदा होगया कि जिससे वह अपने पिताके दर्शनविना अपने जीवनको व्यर्थ समझने लगा और रात दिन इसी रटनमें रहता है कि किस तरह पिताके दर्शन हों । एक दिन माताको खबर न करके बालक 'मणक' अपने घरसे निकल पड़ा, ब्राह्मणपुत्र होनेसे उसे भिक्षा मांगनेमें भी किसी प्रकारका दोष न था, अत एव वह अन्य ब्राह्मण पुत्रोंके समान भिक्षाटन करता हुआ ग्रामानुग्राम अपने पिताकी शोध करने लगा । श्रीशय्यंभवस्वामी इस अवसरमें अपने परिवार सहित चंपापुरी नगरीमें विराजते थे, एक दिन सूरिश्वर श्रीशय्यंभवस्वामी स्थंडिल जा रहे थे (यानी जंगल जानेके लिए बाहर जा रहे थे) दैवयोग उस वक्त पूर्वकृत पुन्यके योगसे 'मणक' भी किसी गाँवसे चंपापुरीकोही आ रहा था । श्रीशय्यंभवसूरिने दूरसे उस बालकको आते हुए देखा, मणकको दूरसे आते देख श्रीशय्यंभवसूरिके हृदय समुद्रमें ऐसा प्रेमका पूर उछला जैसे पूर्णिमाके चंद्रको देखकर महासागरकी

तरंगें उछलती हैं । 'मणक' भी उस मुनिचंद्रको दूरसे आते देख कुमुदके समान प्रमुदित होगया । सूरीश्वरको आज इस बालकको देखकर जितना हर्ष पैदा हुआ इतना कभी न हुआ था, इस हर्ष और आनन्दका कारण तो पाठकजन स्वयमेवही समझ गये होंगे, भगवान श्रीशय्यंभवस्वामिने प्रसन्न होकर उस बालक मणकसे पूछा कि तू कौन है, कहांसे आया है और किसका पुत्र है ? । बड़े रसीले स्वरसे 'मणक' बोला–मैं ब्राह्मणका लड़का हूँ, राजगृह नगरमें रहनेवाले वत्स गोत्रीय शय्यंभव नामा मेरे पिता थे, जब मैं माताके गर्भमें था तब मेरे पिता शय्यंभव जैनमें दीक्षा ले गये थे, अब मुझे मालूम होनेसे मैं उन्हें गाँव गाँव ढूंढता फिरता हूँ, यदि आप मेरे पिता शय्यंभवको जानते हैं तो कृपाकर बतावें, मेरा विचार भी यही है कि जो मेरे पिता मुझे मिल जायें तो मैं भी उनके पास दीक्षा लेकर उनके चरणोंमें रहकर उनकी सदाकाल सेवा करूँ, जो उनकी गति सो मेरी । 'मणक' के मीठे वचनोंसे उसका वृत्तान्त सुनकर सूरीश्वरने समझ लिया कि यह हमाराही पुत्र है, अत एव वे अपना नाम न लेकर बोले–तेरे पिताको मैं जानता हूँ वे मेरे परम मित्र हैं उनके शरीरकी आकृती भी मेरेसी ही है उनमें और मेरेमें कुछ भेद नहीं, तू मुझेही उनके समान समझकर हे शुभाशय ! मेरेही पास दीक्षा ग्रहण कर ले क्योंकि पिता और पिताके मित्रमें कुछ भेद नहीं होता पिताका मित्र भी पितासदृशही माना जाता है ।

यह कह कर श्रीशय्यंभवसूरि उस अबाल बुद्धि बालकको अपने उपाश्रयमें अपने साथ ले चले और विचारने लगे कि आज बड़ा भारी सचित्त लाभ हुआ । गुरुमहाराजने सर्व सावद्य विरति प्रतिपादनपूर्वक यथाविधि उस अल्पकर्मी 'म-

णक' को दीक्षा दे दी और दीक्षा देकर इसकी आयु कीतनी लंबी है यह जाननेके लिए उन्होंने श्रुतज्ञानमें उपयोग दिया । श्रीशय्यंभवसूरि अपने श्रुतज्ञान बलसे 'मणक' की ६ छः महीनेकी आयु देखकर विचारने लगे, अत्यल्पायुवाला यह बालमुनि किस तरह श्रुतज्ञानको धारण करेगा और विना ज्ञान इसकी आत्माका उद्धार किस तरह होसकता है ? सिद्धान्तमें कहा है कि—

अपश्चिमोदशपूर्वी श्रुतसारं समुद्धरेत् ।
चतुर्दशपूर्वधरः पुनः केनापि हेतुना ॥

अर्थात् अपश्चिम यानी अंतिम दश पूर्वधर श्रुतज्ञानके सारका उद्धार करे और चतुर्दश पूर्वधारी किसी कारण पड़नेपरही श्रुतज्ञानका उद्धार करे अन्यथा नहीं, अब मणमुकनिको प्रतिबोध करनेका कारण उपस्थित हुआ है, इसलिए मुझे भी इसके निमित्त श्रुतका उद्धार करनेका समय आया है, यह विचार कर श्रीशय्यंभवसूरिने नवमें पूर्वमेंसे विकाल समयमें उद्धार करके दश अध्ययन गर्भित 'दशवैकालिक' नामका एक ग्रंथ रचा, दशवैकालिक नाम रखनेका यह हेतु था कि दश अध्ययन गर्भित और विकाल समयमें रचना की गई थी इसीसे दशवैकालिक नाम रक्खा गया, इस ग्रंथका पठन पाठन आज भी जैन साधु साध्वियोंमें प्रथमसेही किया जाता है, इसमें साधुका आचार दिखलाया है, उसमें भी आहार निहारके लिए बहुत कुछ विवेचन किया है, दशवैकालिक ग्रंथकी रचना कर निर्ग्रंथ शिरोमणि और कृपाके समुद्र श्रीशय्यंभवसूरिने मणकमुनिको प्रेमपूर्वक पढ़ाया । 'मणकमुनि' दशवैकालिक सूत्रको पढ़ता हुआ साधुके आचारको जानकर गुरुमहाराजकी तथा अपनेसे बड़े

मुनियोंकी भक्तिमें तल्लीन होगया, इस तरह विद्या अध्ययन करते हुए 'मणकमुनि' ने छ महीनेमें दश वैकालिक सूत्रके दश अध्ययन समाप्त कर लिये, इधर 'मणकमुनि' की आयु भी पूर्ण हो आई, गुरुमहाराजने मणकका अन्त समय समझकर उसे अच्छी तरह आराधनादिक कृत्य कराया। मणक महामुनि आराधनापूर्वक काल करके देवलोकका अतिथि बन गया। इधर मणकमुनिका काल होनेपर चतुर्दश पूर्वधारी श्रीशय्यंभवसूरिके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी, यह देखकर यशोभद्रादि शिष्योंने कहा कि भगवन् यह क्या आप संपूर्ण श्रुतके पारग होकर भी इस छोटेसे साधुके मरजानेपर दलगीर होकर अश्रुधारा बहाते हो? गुरुमहाराजने पिता पुत्र संबंधि मणकमुनिका आद्योपान्त वृत्तान्त कह सुनाया और कहा कि इस अनल्प बुद्धिवाले और अल्प आयुवाले मुनिने निरतिचार चारित्र पालकर थोड़ेही दिनोंमें अपनी आत्माका कल्याण कर लिया, पुत्र संबंधि स्नेह आ जानेसे हमारे नेत्रोंमें अश्रु आ गये क्योंकि संसारमें पुत्रका स्नेह दुस्त्यज होता है। विनयपूर्वक यशोभद्रादि शिष्य बोले–भगवन्! आपने पुत्र संबंध हमें प्रथम क्यों नहीं विदित किया? यदि आप कृपाकर जरा भी प्रथम यह सूचना करते कि यह मणक हमारा पुत्र है तो हम लोग इसकी सेवाभक्ति करके इस वाक्यको सत्य करते जो कहा है कि–गुरुवद्गुरुपुत्रेपिवर्तेतेति, हमने अनजानपनेमें इसके विपरीत मणकसे अपनी सेवाभक्ति कराई। गुरुमहाराज बोले–यदि हम पहलेसे तुम्हें पुत्र संबंध कह देते तो तुम लोग उस बाल मुनिसे सेवा भक्ति न कराते, तुमसे तपस्वियोंकी सेवाभक्ति न करनेसे उसकी आत्माका उद्धार थोड़ेसे समयमें होना मुश्किल था, क्योंकि सब तपोंमें वैयावृत्त तप बढ़कर है, इसी लिए हमने पहले इस बातको प्रगट नहीं किया था

और इसकी अल्पायु जानकर हमने इसकी आत्माके कल्याण निमित्तही यह दशवैकालिक नामका सूत्र बड़े सिद्धान्तोंमेंसे सार निकालकर रचा था, अब इस ग्रंथका प्रयोजन हो चुका इस लिए इसे जहां जहांसे उधृत किया था वहां वहां निवेशित किये देता हूँ, यह बात सुनकर यशोभद्रमुनिने श्री संघके सामने कह सुनाया कि आचार्य महाराजने जो दशवैकालिक ग्रंथकी रचना की थी उसे यथा स्थान निवेशित करते हैं। यह सुनकर समस्त संघने श्री शय्यंभवसूरिको विनयपूर्वक यह विज्ञप्ति की कि भगवन् आपकी कृपासे मणकमुनिके निमित्त रचा हुआ यह दशवैकालिक ग्रंथ जगत उपकारकारक होना चाहिये, अबसे आगे मन्द बुद्धिवाले प्राणी होंगे, इस लिए आपकी कृपासे इस ग्रंथको पढ़कर वे भी मणकमुनिके समान कृतार्थ हों, क्योंकि अल्प बुद्धिवाले प्राणी श्रुतसागर बड़े बड़े सिद्धान्तोंको नहीं पढ़ सकेंगे। वे श्रुतरूप अम्भोजके परागके समान इस दशवैकालिक ग्रंथको आचमन करके भमरोंके समान प्रमोदको प्राप्त होंगे।

कृपालुओंमें शिरोमणि श्रीशय्यंभवसूरिने श्रीसंघके आग्रहसे दशवैकालिक सूत्रको वैसाही रहने दिया। तत्पश्चात् श्रीशय्यंभवसूरि कितने एक समयतक भव्य प्राणियोंको बोध करते हुए पृथ्वीतलपर विचरते रहे। एक दिन अपना अन्त समय जानकर श्रीशय्यंभवसूरिने श्रुतज्ञानपारग अपने शिष्य श्रीयशोभद्रको अपने पदपर स्थापन कर दिया और आप संलेखनापूर्वक काल करके उर्ध्वलोकमें (यानी स्वर्गलोकमें देवपने जा पैदा हुए॥

भगवान महावीरस्वामीके निर्वाण बाद ९८ अठानवें वर्ष व्यतीत होनेपर श्रीशय्यंभवसूरिका स्वर्गवास हुआ॥

समाप्त.